कबीर और जायसी

डॉ० पुरुषोत्तम वाजपेयी

कबीर और जायसी पर बहुत कुछ लिखा गया है। यद्यपि मूलतः जायसी कवि थे और कबीर कवि नही थे, कबीर धर्मगुरु थे, फिर भी काव्य की दृष्टि से कबीर को उतना ही महत्व दिया जा रहा है जितना दार्शनिक कबीर को पहले दिया जाता था। यही बात जायसी के सम्बन्ध मे भी है जायसी कवि भी थे और दार्शनिक भी। किन्तु रूपक काव्य लिखने के कारण वे उसी प्रकार के कवि थे जैसे कोई दार्शनिक अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन करने के लिये किसी कथानक का आश्रय ले। किन्तु जायसी कोरे दार्शनिक ही नही, कवि भी थे।

लेखक ने अत्यन्त सहृदयता के साथ कबीर और जायसी के जीवनवृत्त, उनकी काव्य-शक्ति, उनकी भाषा, उनका सत्तस्वरूप, उनके दार्शनिक सिद्धान्त, सामाजिक पक्ष, उपदेश रहस्यानुभूति और उसकी अभिव्यक्ति, उनकी रचना सब पर अलग-अलग विश्लेषण दृष्टि से विचार किया है। यह ग्रन्थ ऐसे ढग से लिखा गया है कि यदि कोई चाहे तो इसके अलग-अलग दो खड कबीर और जायसी बनाकर अलग-अलग भी अध्ययन कर सकता है।

लेखन ने जहॉ साहित्यिक दृष्टि से और दार्शनिक दृष्टि से दोनो रचयिताओं का सूक्ष्म अध्ययन किया है, वहॉ उसने अत्यन्त निष्पक्षता के साथ दोनो की खरी आलोचना करने मे भी किसी प्रकार की कृपणता नही की।

कबीर और जायसी

कबीर और जायसी

डॉ० पुरुषोत्तम वाजपेयी

मूल्य : एक सौ पचास रुपये मात्र

पुस्तक : कबीर और जायसी

लेखक : डॉ० पुरुषोत्तम वाजपेयी

प्रकाशक : चन्द्रलोक प्रकाशन
१२८/१०६ जी ब्लाक, किदवई नगर,
कानपुर – २०८ ०११
दूरभाष . (०५१२)६१६३४८

संस्करण : २००१ ई०

मूल्य : १५०.००

शब्द सज्जा : रक्षित कम्प्यूटर्स, ३०७/४ जूही लाल कालोनी, कानपुर

मुद्रक : अजित आफसेट, रामबाग, कानपुर

Kabir Aur Jaysi

By - Dr. Purushottam Vajpai

Price - Rs. One Hundred Fifty only

आचार विचार के धनी एवम् परम श्रद्धेय
गुरुदेव पं० मुंशीराम जी शर्मा
को सादर

भूमिका

श्री पुरुषोत्तम वाजपेयी द्वारा लिखित 'कबीर और जायसी' शीर्षक ग्रन्थ का आदि से अन्त तक पारायण करने का अवसर मिला, लेखक ने अत्यन्त सहृदयता के साथ कबीर और जायसी के जीवनवृत्त, उनकी काव्य–शक्ति, उनकी भाषा, उनका सत्तस्वरूप, उनके दार्शनिक सिद्धान्त, सामाजिक पक्ष, उपदेश रहस्यानुभूति और उनकी अभिव्यक्ति, उनकी रचना सब पर अलग–अलग विश्लेषणात्मक दृष्टि से विचार किया है। यह ग्रन्थ ऐसे ढग से लिखा गया है कि यदि कोई चाहे तो इसके अलग–अलग दो खड कबीर और जायसी बनाकर अलग–अलग भी अध्ययन कर सकता है।

लेखक ने जहॉ साहित्यिक दृष्टि से और दार्शनिक दृष्टि से दोनो रचयिताओ का सूक्ष्म अध्ययन किया है, वही उसने अत्यन्त निष्पक्षता के साथ दोनो की खरी आलोचना करने मे भी किसी प्रकार की कृपणता नही की। जीवन के जिन अनेक पक्षो मे कवि अपनी अन्तर्भेदनी दृष्टि डालकर उसका तत्व ग्रहण करके उसका परिचय देने का प्रयत्न करता है, उन सबकी ओर से लेखक सजग है और उसने उन सभी धार्मिक पक्षों का अनुबंधपूर्वक विश्लेषण किया है, जिनसे कवि की विभिन्न भाव–धाराऍ व्यक्त हो सकी हैं।

कबीर और जायसी पर इधर बहुत कुछ लिखा गया है। यद्यपि मूलतः जायसी कवि थे और कबीर कवि नही थे, फिर भी काव्य की दृष्टि से कबीर को उतना ही महत्व दिया जा रहा है जितना दार्शनिक कबीर को पहले दिया जाता था। यही बात जायसी के सबध मे भी है, जायसी कवि भी थे और दार्शनिक भी। किन्तु रूपक काव्य लिखने के कारण वे उसी प्रकार के कवि थे जैसे कोई दार्शनिक अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन करने के लिए किसी कथानक का आश्रय ले। किन्तु जायसी कोरे दार्शनिक ही नहीं, कवि भी थे। लेखक ने अत्यन्त सत्य–निष्ठा के साथ कबीर और जायसी दोनो के उभय पक्ष अत्यन्त विशदता के साथ प्रस्तुत करने मे कोई संकोच नहीं किया।

अभी तक कबीर और जायसी पर कोई तुलना ग्रन्थ मेरी दृष्टि मे नही आया। इस विचार से यद्यपि यह ग्रन्थ इस विषय पर पहला है किन्तु इतना सावयच है कि कबीर और जायसी का अध्ययन करने वाले लोग इस ग्रन्थ से अपरिमित लाभ उठा सकेगे। हमे पूर्ण विश्वास है कि हिन्दी साहित्य इस ग्रन्थ का उचित समादर करेगा। हम हृदय से विद्वान लेखक की इस कृति का अभिनन्दन करते हैं और विश्वास करते है कि उसकी लेखनी अधिक सशक्त होकर और भी अधिक सशक्त रचनाये प्रस्तुत करेगी।

– सीताराम चतुर्वेदी

लोलार्क षष्ठी, सं० २०१३

आत्म–निवेदन

प्रस्तुत पुस्तक मे कबीर और जायसी पर विभिन्न दृष्टिकोणो से विचार करते समय अब तक की समस्त उपादेय सामग्री का उपयोग कर उसका सार–तत्व मोटे रूप मे रखने की चेष्टा की गई है। लिखते समय इस बात का ध्यान रखा गया है कि माध्यमिक एव उत्तर–माध्यमिक वर्ग के विद्यार्थी इससे लाभान्वित हो सके। आदरणीय प्रोफेसर प० सिद्धनाथजी मिश्र एम०ए० एव प्रोफेसर सुधाकर पाण्डेय ने प्रेरणा एव परामर्श देकर तथा भाई राजेन्द्र सिह एम०ए० ने पुस्तक हेतु आवश्यकीय पाठ्य सामग्री जुटाकर मेरे प्रति जो उदारता दिखाई है। उसके लिए उनका मै हार्दिक आभारी हूँ।

आचार्य प्रवर प० सीताराम जी चतुर्वेदी ने पाण्डुलिपि पढकर जिन उत्साहपूर्ण शब्दो मे मगलाशा व्यक्त की है वह मेरे जीवन की स्मरणीय ध रोहर है।

यदि मेरी इस रचना से कबीर और जायसी को समझने मे किचित मात्र भी अध्येताओ को सहायता मिली तो मै अपना परिश्रम सार्थक समझूँगा।

काशी

दीपावली, स २११३ वि.

विनयावनत्

पुरुषोत्तम वाजपेयी

विषय सूची

कबीर

१ पूर्वापर परिस्थिति	.	१३
२ जीवन–वृत्त	.	१६
३. कबीर · कवि के रूप मे	.	२४
४. कबीर : समाज–सुधारक के रूप मे		२६
५. सिद्धान्त और मार्ग	..	३५
६. कबीर की रहस्यानुभूति	..	४०
७. कबीर की साखी	.	४५
८ कबीर के पद	..	४६
६ कबीर की परम्परा को अपनाने वाले अन्य कवि	..	५४.

जायसी

१ प्रेम–गाथा की परम्परा		६१
२. जीवन–वृत्त	..	६६
३ पद्मावत का कथानक	..	७१
४. जायसी का काव्य	.	७७
५. मत और सिद्धान्त	..	८२
६. सूफी और संत कवि	..	८६
७. जायसी का रहस्यवाद	..	६०
८. प्रबध काव्य के रूप में पद्मावत	..	६५
६. पद्मावत की प्रेम–पद्धति	..	६६
१०. उपसंहार	..	१०४

कबीर

प्रथम

पूर्वापर परिस्थिति

कबीर के पूर्ववर्ती अनेक भारतीय मनीषियो द्वारा सत काव्य का सृजन किया गया था। परन्तु उनका क्रम–विधि से विवरण प्रस्तुत करते समय लेखको को उनके काल के सबध मे अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हुई है। सत काव्य का आरम्भ कब से हुआ यह अनिश्चित सा ही है ? कुछेक विचारको का ऐसा मत है कि सत काव्य का आरम्भ सस्कृत साहित्य के साथ ही साथ हुआ है।

सत्य व्रत सत्य परं त्रि सत्य सत्यस्य योनि निहित च सत्ये।
सत्यस्य सत्यमृत सत्यनेत्र सत्यात्मक त्वां शरण प्रपन्नाः।।

— श्रीमद्भागवत।

से भी आभास मिलता है कि सत साहित्य का अभ्युदय आचार विचार के धनी महापुरुषो के आविर्भाव के साथ ही हुआ होगा।

मानव हृदय अपने मूल रूप मे न बुरा है और न अच्छा। हृदय और मन पर पडे सस्कार उसे अच्छा और बुरा बनाने के उत्तरदायी रहा करते है। शेक्सपियर की यह उक्ति There is nothing good or bad but thinking makes it so. भी इस विचार का समर्थन करती है। मनुष्य का हृदय साधारणतया जिज्ञासु और सवेदनशील रूप मे ही प्रतिलक्षित होता है। जीवन के विविध अगो के निरीक्षणोपरात उसने अनन्त सत्ता को समझने के लिए दो मार्ग काव्य और धर्म अथवा सौदर्य और सत्य निर्धारित किये।

सत और कवि का कर्म एक सा ही हुआ करता है सत सत्वान्वेषी और कवि सौदर्यान्वेषी होते हैं सौदर्य और सत्य के सामजस्य से ही जन कल्याणकारी भावना का प्रस्फुटन हुआ करता है। सत और कवि दोनो ही के कर्म महान है। वे हमे भावना सोपानों के द्वारा स्थूल से सूक्ष्म की ओर ले जाते हैं किसी भी वस्तु के साक्षात्कार के पश्चात् उसकी अभिव्यक्ति जब सत और कवि के द्वारा हुआ करती है। तब हम प्रेम और साहित्य की धारा को विकसित हुआ पाते हैं। अपने विचार ततुओं को इतिहास के क्रमिक विकास पर (वैदिक युग से लेकर आज तक) फैलाने के पश्चात बुद्धि जो कुछ ग्रहण करने मे समर्थ होती है, उस आधार पर यह कहना

है कि जिस युग मे सन्तो की अनुभूति और अभिव्यक्ति जितनी गहराई के साथ प्रतिलक्षित हुई है, उस युग का साहित्य उतना ही सजीव और स्फूर्तिदायक बन पडा है, वस्तुस्थिति से परे न होगा।

कालान्तर से भारतवासियो ने एक केंद्रीयभूत सत्ता के स्थान पर उसके विभिन्न रूप रगो की कल्पना कर अनेक देवी देवताओ की अर्चना करना प्रारभ कर दिया। जिन सतो ने तत्व रूप मे जो कुछ भी ग्रहण किया वे उसे ही प्रतिप्रादित कर अपने मतावलबियो के लिए उपदेशात्मक रूप मे उसकी अभिव्यक्ति की। ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग की व्यवस्था कर इनके प्रतिपादको ने यह अनुभव किया कि विचारधारा को सार्वजनिक और सार्वग्राही बनाने के लिए बैखरी वाणी का आश्रय अत्यत आवश्यक हैं यही कारण है कि इतिहास पुराणो मे व्यास, नारद ओर याज्ञवल्क्य आदि मुनियो ने ईश्वरीय तत्व को कविता के माध्यम से जनता जनार्दन तक पहुचाने का प्रयास किया। हिन्दी साहित्य मे सत–काव्य की परम्परा मे हमे सबसे पहले जयदेव के पद्य मिलते है। परन्तु जयदेव से सत–काव्य का अभ्युदय मानना अनुपयुक्त है क्योकि उनका काव्य भी अधिकाशतः सस्कृत साहित्य के अतर्गत ही आता है। ग्रथ साहब मे नामदेव जी का उल्लेख मिलता है। ये सतारा प्रात के नरसी ब्राह्मणी नामक ग्राम के निवासी थे। इनका जन्म सम्वत् १३२७ मे कार्तिक शुक्ल ११ रविवार को सूर्योदय के समय हुआ था। इनकी परम्परा से दरजी की वृत्ति थी। और परम्परा से ही ये विट्ठल भक्त थे। आचार्य सुधाकर जी इनका जन्म काल सम्वत् १३२४ मानते हैं आचार्य शुक्ल जी इन्ही नामदेव को सत काव्य का संस्थापक मानते हैं शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास मे लिखा है कि इनकी रचनाओ मे एक विशेष बात यह पाई जाती है कि कुछ पद्य तो सगुणोपासना और कुछ निर्गुणोपासना से सबधित हैं। ये कुछ सीधे साधे मार्ग की ओर जा रहे थे पर सत ज्ञानदेव के प्रभाव से प्रभावित हो अतमुर्खी साधना के द्वारा निर्गुण ब्रह्म के साक्षात्कार की चर्चा कर बैठे।

'हिन्दू पूजे देहरा मुसलमान मासीद।
नाभा सोई सेवया जहं देहरा न मसीद।।'

प्रस्तर पूजा के सबध मे भी नामदेव कबीर के प्रथ–पदर्शक हैं, उनका विचार है–

'एक पाथर विजय भाव
दूसर पाथर करिये भाव'

अच्छी और बुरी नाम की मूलतः कोई वस्तु नही है। प्रवृत्तियो के आधार पर इनका निर्माण हुआ करता है।

कुछ लोगो का मत है कि कबीर और नामदेव समकालीन थे। परन्तु डा रामकुमार वर्मा ने इस तथ्य का खडन करते हुए कहा है कि भाषा की पुष्टि के आधार पर नामदेव के युग का निर्णय करना उसी प्रकार होगा जिस प्रकार अमीर खुसरो को भाषा की समता के कारण १९वी सदी की खडी बोली मे रखने की चेष्टा करना है।

कबीर पथ के विद्वानो के मतानुसार कबीर साहब का जन्म सत १४५५ ही सत्य कहा जाता है। श्री लक्ष्मण नारायण जी गर्दे की राय मे नामदेव जी ने सवत् १४०७ वि मे अस्सी वर्ष की अवस्था मे पण्ढरपुर मे श्री विट्ठल मदिर के महाद्वार की सीढी पर शरीर छोडा था। उपर्युक्त दोनो मतो के सामजस्य से कबीर नामदेव के समकालीन नही थे, यही स्वीकार करना पडेगा।

नामदेव के बाद त्रिलोचन का नाम आता है। यह नामदेव के समकालीन थे ओर पण्ढरपुर के निवासी थे। (An outline of the religious literature of India) के लेखक जे.एन. फर्कुहर ने पृष्ठ सख्या २९० और ३०० के बीच इनकी चर्चा की है। "Another Maratha singer Trilochan by name seems to have been contemporary of Namdeo but very little is Known about him."

डा. रामकुमार वर्मा त्रिलोचन को भूत, वर्तमान और भविष्य का ज्ञानी होने के कारण त्रिलोचन मानते है।

ग्रथ साहब मे इनके हिन्दी भाषा मे लिखे हुए तीन पद मिलते है। जिनमे निर्गुण ज्ञानाश्रयी प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। इनके अतिरिक्त कबीर के पूर्व नामदेव के समकालीन 'सदन' और 'बेनी' की चर्चा भी मिलती है, जिनकी रचनाओ मे भाषा की प्राचीनता तथा हठयोग के आध्यात्मिक साधन के प्रणाली के दर्शन होते है। ये दोनो सत उत्तरी भारत मे हुए है, परन्तु नामदेव और त्रिलोचन का उदय दक्षिण मे होने के कारण सत मत का प्रादुर्भाव महाराष्ट्र प्रान्त से ही हुआ है, यही सर्वस्वीकृत तथ्य है।

कबीर के पूर्व होने वाले सतो मे रामानन्द जी का प्रमुख स्थान है। इनका समय सम्वत् १३५३ माना जाता है, जिसकी पुष्टि भाषा विज्ञान के विशिष्ट विद्वान डा. भण्डारकर जी ने अपनी पुस्तक (Vaishnavism Shaivaism and other minor religions of India)[१] मे की है। रामानन्द जी के दो पद ग्रन्थ साहब मे भी मिलते हैं एक तो निर्गुण मत तथा दूसरा हनुमान जी की स्तुति से सबधित है।

रामानन्द जी की प्रमुख विशेषता विभिन्न सम्प्रदाय और जातियों को सम्मिलित करने में है। "Among his personal desciples we find not only

Sudra, Jat and outcaste but Mohammedans and woman too, whose name was Padmavatı "[1]

रामानन्द के प्रसिद्ध बारह अनुयायियो मे से धन्ना, पीपा, रैदास और कबीर का विशेष स्थान है। धन्ना जाट थे और स्वामी रामानद जी द्वारा काशी मे दीक्षित हुए थे। इन्हे अध्ययन और शास्त्र श्रवण का सौभाग्य नही मिला था। बाल्यकाल से ही हृदय मे भगवत्–भक्ति का बीज अकुरित हो उठा था। सत समागम के प्रारम्भ मे मूर्ति पूजक होते हुए भी स्वामी रामानद के सम्पर्क मे आने के बाद इनके विचार एकेश्वरवादी तथा निर्गुण ब्रह्म के पोषक हो गये थे।

राजकुमार पीपा का लालन पालन अरावली पर्वत की श्रेणियो से घिरे हुए गागरौन नामक गढ मे हुआ था। बचपन से ही धार्मिक भावना को प्रश्रय देने वाले सत पीपा जी राजसिहासन पर बैठने के पश्चात् भी सयम नियम से धर्मरत रहे।

प्रारम्भ मे स्वामी रामानद जी ने इनको राजा होने के कारण दीक्षित करने मे असमर्थता प्रकट की, परन्तु इनकी लगन और जिज्ञासु भावना के कारण इन्हे अपना शिष्य बना लिया। ये उच्चकोटि के ईश्वर भक्त थे। इनकी १२ रानियो मे एक रानी सीतादेवी भी इन्ही के साथ साधु वेश मे रहती थी। स्वामी रामानद से दीक्षित होने के कारण उनकी रामात् शाखा के अनुयायी और अद्वितीय समाज सुधारक थे। इनके सबध मे शिव जी की उपासना की सूचना डाक्टर रामकुमार जी वर्मा ने "हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास" मे दी है। इनके कुछेक पद ग्रथ साहब मे मिलते है।

धन्ना, पीपा के सगी और कबीर के समकालीन सत कवियो मे रैदास का नाम प्रमुख है। इनका जन्म काशी मे हुआ था। ये जाति के चमार थे। पिता का नाम रग्घू और माता का नाम घुरबिनिया था। स्वामी रामानद द्वारा दीक्षित थे। मीराबाई इन्ही की शिष्या थीं।

रैदास और कबीर मे वाद–विवाद हुआ करता था। ये अलमस्त फक्कड और सन्तोषी जीव थे। इनके आचार और विचार बहुत ही शुद्ध थे। मास मदिरा का सेवन नही करते थे। सात्विक विचारधारा को अपनाने वाले इस सत के चमत्कार की कई घटनाये जनसमुदाय के बीच प्रसिद्ध हैं। अपने सबध में इनकी यह उक्ति –

"जाति भी ओछी, करम भी ओछा
ओछा किसब हमारा

---

१ *एक दूसरे मराठा गीतकार त्रिलोचन है जो नामदेव के समकालीन ज्ञात होते है, परन्तु उनके सम्बन्ध मे कम ज्ञात है।*

नीचे से प्रभु ऊंच कियौ है

कह रैदास चमारा।"

से इनके चमार जाति मे उत्पन्न और जूते सी–सीकर उदर पोषण करने का निश्चय हो जाता है।

रैदास की बानी और रैदास के पद गुजरात प्रात के अन्तर्गत रहने वाले अनेक रविदास मतानुयायियो द्वारा गाये जाते है। उत्तर प्रदेश मे भी चमार जाति के बीच इनकी बानी का बहुत प्रचार है। इनके पदो मे दीनता सरसता और सरलता के साथ–साथ निसकोच रूप से भाव प्रकाशन के दर्शन होते हैं।

"हरि सो हीरा छाडि के करै आन की आस ।

ते नर जमपुर जाहिगें, सत भाषै रैदास।।"

खण्डन की प्रवृत्ति न अपनाते हुए उन्होने निर्गुण मत का समर्थन किया है। अपने प्रभु को माधो नाम से सम्बोधित किया है।

प्रेम और विराग की तो वे मूर्ति थे। भक्त माल मे रैदास जी की चमत्कार सम्बन्धी कई कहानियाँ मिलती हैं। १२० वर्ष की अवस्था मे इनका स्वर्गवास हुआ था।

ऐतिहासिक परिस्थिति :–

कबीर के प्रादुभाव के पूर्व उत्तरी भारत मे मुसलमानो का शासन स्थापित हो चुका था। दिल्ली मे तुगलक वश का अन्तिम बादशाह महमूद तुगलक राज्य करता था। विलास प्रिय होने के कारण शक्तिहीन और तेजहीन हो गया था इससे बडे–बडे उमराव और नवाब अपनी नोच खसोट मे लगे हुए थे वे स्वय बादशाह बनने का स्वप्न देख रहे थे। अवज्ञा और अनुशासनहीनता का बोलबाला था। इसी समय समरकन्द के सुलतान तैमूर लग ने भारत पर आक्रमण किया। मुलतान, फिरोजाबाद और दिल्ली को पादाक्रान्त और जनसहार करता हुआ कुछ दिन बाद वह अपने देश को लौट गया। तातारी सेना की लूट–खसोट ओर बर्बरता से तत्कालीन भारतवासियों के हौसले पस्त हो चुके थे। बेचारे किसानो की बडी दुर्दशा थी। उनके खेत, जानवर, घर बार सभी नष्ट किये जा चुके थे। परिवार वियोग, अकाल और महामारी से त्रस्त जनता की रीढ़ टूट रही थी।

---

१ *उनके वैयक्तिक शिष्यो में हम केवल शूद्र, जाट और परिगणित लोगों को ही नहीं वरन् मुसलमान और स्त्रियों को भी पाते हैं, जिनमें से एक पद्मावती थी।*

राजनीतिक परिस्थिति :–

सुल्तानियत का बोलबाला था। पर्याप्त यातायात साधनो के अभाव मे तथा जो कुछ भी थे उनमे विलम्ब होने के कारण जनता पर किये गये अत्याचारो की पुकार शासको तक नही पहुच पाती थी। जिसकी लाठी उसकी भैंस की कहावत चरितार्थ हो रही थी। अधिकाश सुलतान विलासी थे। जनता इनकी प्रसन्नता के हेतु इनके जीवन को आदर्श मानकर उसी मे रग रही थी। प्रजा के दु ख दूर करने की न तो उनमे भावना ही थी और न अवकाश। जनता निरावलम्ब हो मौन रहने मे अपना कल्याण समझती थी। जो कुछेक हिन्दू शासक शेष थे। उनकी भी दमखम जाती रही थी। वे चुपचाप अपनी ही खैर मनाया करते थे।

समय की गति से कुछ वर्षो बाद मुगल शासन स्थापित हुआ। राजनीतिक वातावरण मे शाति के लक्षण दिखलाई पडने लगे थे। परन्तु समाज मे जनता का शोषण चल रहा था। अधिकार की पूजा करने वाले तथा धर्म के कच्चे व्यक्ति शासको का धर्म स्वीकार कर अपने पारस्परिक मनोमालिन्य की कसर शासको से मिलकर निकालते थे। अपने मतावलम्बियो की सख्या वृद्धि शासक वर्ग की रुचि थी। राज्य प्रलोभनो एव व्यापारिक सुविधाये प्रदान कर धर्म परिवर्तन करने के लिये लोगो को आकर्षित किया जाता था। हिन्दू समाज, जो अनेक आक्रामक जातियो से अप्रभावित हो अपने गौरव को किसी प्रकार बचाये हुये था, मुस्लिम सभ्यता और सस्कृति द्वारा झकझोर दिया गया। उच्च जाति की अहमन्यता और पाखण्ड ने समाजस्वीकृत निम्न वर्ग की जातियो एव उपजातियो को धर्म परिवर्तन के लिये बाध्य किया। इस प्रकार हिन्दू समाज की अवस्था तीव्र गति से नीचे की ओर जा रही थी। विषमता, विश्रृखलता और अधिकार पद का प्राबल्य था। हिन्दू–समाज का निम्न वर्ग जो सदियो से दबा हुआ चला आ रहा था, उसने इस्लाम धर्म स्वीकार कर उच्चवर्गीय हिन्दुओ के प्रति अपने क्षोभ का प्रदर्शन किया। साधु, सन्यासी, फकीर और मुल्ला सभी समाज को अपने अपने ढंग पर ले जाने के लिये प्रयत्नशील थे पर गुणो के अभाव से ये समाज को अधिक समय तक आकर्षित नही कर पाते थे। साधु वेश मे मास, मदिरा, व्यभिचार आदि से प्रभावित ये पाखण्डी समाज को पतन के गर्त मे गिरा रहे थे।

इसी समय पहुँचे हुये सतो मे अग्रणी सत कबीर का प्रादुर्भाव हुआ।

द्वितीय

जीवनवृत

इनकी उत्पत्ति के सबध मे अनेक किवदन्तियॉ है। श्री माधवजी द्वारा इन किवदन्तियो का उल्लेख निम्नलिखित रूप मे किया गया है।"कहते है जगत गुरु रामानन्द स्वामी के आशीर्वाद से ये काशी की एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुए। लज्जा के मारे वह नवजात शिशु को लहरतारा के ताल के पास फेक आयी। नीरू नाम का जुलाहा उस बालक को अपने घर उठा लाया, उसी ने उस बालक को पाला पोषा। यही बालक कबीर कहलाया। कुछ कबीर पथियो की मान्यता यह है कि कबीर का आविर्भाव काशी के लहरतारा तालाब मे कमल के एक अति मनोहर पुष्प के ऊपर बालक रूप मे हुआ था। एक प्रतीचि नामक देवागना के गर्भ से भक्तराज प्रहलाद ने उन्हे कमल के पत्ते पर रख कर लहरतारा तालाब मे तैरा दिया था और नीरू नीमा नाम के जुलाहा दम्पति जब तक आ कर उस बालक को नही ले गए तब तक प्रतीचि उनकी रक्षा करती रही। कुछ लोगो का यह भी कथन है कि कबीर जन्म से ही मुसलमान थे और सयाने होने पर स्वामी रामानन्द के प्रभाव मे आकर उन्होने हिन्दू धर्म की बाते जानी।"

उपर्युक्त किवदन्तियो तथा अब तक की खोजो के आधार पर इतना ही कहा जा सकता है कि इनका लालन पालन नीरू और नीमा नामक जुलाहा दम्पति द्वारा हुआ था। अपने माता पिता का नाम कबीर को स्वयं न मालूम होने के कारण कुतरकी वाद विवाद करने वालो के सम्मुख इनको लज्जित होना पडता था।

जन्म की ही भाति इनकी जाति के सबध मे भी अनेक मत हैं।

"तूं ब्राह्मण मैं काशी का जुलहा बूझहू मोर गियाना।"

❀ ❀ ❀

"जाति जुलाहा मति कौ धीर। हरषि गुन रमै कबीर।।
परिहरि काम राम कह बौरे। सुनि सिख बंधू मोरी।।
हरि को नांव अभै पद दाता कहै कबीरा कोरी।।"

इससे यह आभास मिलता है कि वे जुलाहे थे, परन्तु हिन्दू जुलाहे थे क्योकि हिन्दुओ में कोरी लोग पहले जुलाहे का कार्य करते थे और आज कल

राजगीरी का पेशा करने लगे है। इनके जीवन का अधिकाश समय काशी मे ही व्यतीत हुआ था और काशी इन्हें प्रिय भी थी। काशी पडितो और अध्यात्म जिज्ञासुओ का आदिकाल से केन्द्र रही हे। कबीर के समय मे भी स्वामी रामानन्द, रैदास आदि अनेक बडे और छोटे भक्त अपने अपने पूर्वजो के निवास स्थान छोड कर काशी आ बसे थे। फिर कबीर का तो जन्म ही काशी नगरी के अन्तर्गत लहरतारा नामक ग्राम मे हुआ था उनका काशी से मोह होना स्वाभाविक ही था। उन्होने स्वय इस सबध मे अपने विचार व्यक्त किये है जैसे –

१. " सकल जन्म शिवपुरी गवाया"

२. " जीव जल छाडि बाहिर भई मीना।
तजि ले बनारस मति भई थोरी।।"

हम लोगो की भॉति कबीर ने पाठशाला अथवा मकतब मे शिक्षा नही प्राप्त की थी।

"मसि कागद छूवौ नही, कलम गहौ नही हाथ"

अपने पालनकर्ता नीरू जुलाहे के व्यवसाय मे सहायता पहुचाने का कार्य उन्हे करना पड़ता था और यही उनके लिए आगे जब स्वय वे गृहस्थी के सचालक रूप मे जीवन क्षेत्र मे उतरे तो सहायक सिद्ध हुआ। बचपन से ही ये बडे दयालु थे। कहते हैं जो कपडा ये अपने हाथ से बुनते थे, उसे साधु और गरीबो मे बाट दिया करते थे। दीन दुखियो और साधुओ की सेवा मे इनका अधिक समय बीतता था और इस कार्य के लिए नीरू और नीमा दोनों ही इनको डॉटते भी रहते थे।

जब कबीर साहब बडे हुए तो इनकी इच्छा गुरु करने की हुई। गुरु करने की प्रथा बहुत पुरानी है। गुरु से धर्म दीक्षा लेना आज भी विशेषकर काशी मे अधिक दिखलाई पडता है लेकिन अन्य रीति रिवाजो की भाति इसका भी महत्व अब धीरे–धीरे कम हो गया है। विद्या प्राप्ति के लिए भी लोग गुरु किया करते थे। मुसलिम शायरो मे यह प्रथा आज भी शेष है वे उस्ताद के पास जाकर अपने कलाम को ठीक कराते है और उनसे सलाह भी लेते है। कबीर साहब को गुरु करने की इच्छा हुई। उस समय के ख्याति प्राप्त गुरु रामानन्द जी के पास गये। वे राम की भक्ति का उपदेश देते थे। उनका मत था कि कोई भी पुरुष हो या स्त्री, हिन्दू हो अथवा मुसलमान परमेश्वर का भजन करने से और जीवन मे संयम और नियम को अपनाने से परमेश्वर को प्राप्त कर सकता है। कबीर ने अपने अन्तर को टटोलने के पश्चात स्वामी रामानन्द जी के मतो से साम्यता रखने वाले अंकुर प्राप्त किये एतदर्थ उन्होंने स्वामी रामानन्द जी से शिष्य बनाने के लिए याचना की। उनकी

अस्वीकृति पर ये एक दिन एक पहर रात रहते ही काशी स्थित पचगगा घाट की सीढियो पर जाकर लेट गये। स्वामी रामानन्द जी इसी घाट पर स्नान करने आया करते थे। अत नियमानुसार स्नान हेतु जब वे सीढियां से उतर रहे थे अचानक उनका पैर कबीर के ऊपर पड गया। रामानन्द जी तुरन्त ही पैर हटाकर राम–राम कहते हुए आगे बढ गए। स्वामी जी के मुह से उच्चारित राम–राम शब्द को इन्होने गुरु मन्त्र मानकर अपने को उनका शिष्य कहने लगे। जब स्वामी जी को इस प्रकार से शिष्यत्व ग्रहण करने की कथा मालूम हुई तो वे बडे स्नेह से कबीर को अपना शिष्य मानने लगे।

मुसलमान कबीर पथियो की मान्यता है कि कबीर सूफी फकीर शेख तकी के शिष्य थे। प्रो. सुधाकर जी ने दो शेख तकी की चर्चा की है प्रथम तो मानिकपुर वाले और दूसरे झूसी वाले। कानपुर क्राइस्ट चर्च कालेज के सस्थापक और शिक्षा शास्त्री डा. वेस्टकाट ने भी 'कबीर एण्ड दी कबीर पन्थ' मे कबीर को शेख तकी का ही शिष्य माना है। मतो मे विभिन्नता होने के कारण आलोचको ने कबीर की वाणी से इस सबध मे सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया और इस आधार पर कि ''हम काशी मे प्रकट भये है, रामानन्द चेताये'' तथा आचार्य सुधाकर जी के इस विवेचन पर ''उनके शिष्य 'धर्म दास' गरीब दास भी उन्हे रामानन्द का शिष्य मानते हैं। भक्तमाल सवत् १६४२ हित हरि वशव्यास, स १५५६, भी यही मानते हैं। मोहैसिन फनी काश्मीर वाले (जिनका उल्लेख डाक्टर बडथ्वाल ने 'कबीर एण्ड दी कबीर पन्थ' के आधार पर किया है) भी रामानन्द को उनका गुरु बताते है।'' स्वामी रामानन्द ही इनके गुरु थे यही मानना न्याय सगत है। कबीर व्यक्ति पूजक नही थे यह उनकी कृतियो की चर्चा के समय ज्ञात हो सकेगा, परन्तु गुरु के प्रति उनके हृदय मे बडी श्रद्धा थी। उनके पदो मे स्वामी रामानन्द जी का नाम जिस श्रद्धाभावना से ओत–प्रोत मिलता है उतना न तो शेख तकी और न पीर पीताम्बर का जिनके लिए भी कबीर का गुरु होने की चर्चा लोगो द्वारा की गई है। जनश्रुति के आधार पर कहा जाता है कि इनका विवाह लोई नाम की महिला से हुआ था। परन्तु कबीर पन्थ के विद्वानो का मत है कि लोई नाम की स्त्री उनके साथ आजन्म रही परन्तु कबीर ने उससे विवाह नही किया था। डाक्टर बडथ्वाल कबीर का दाम्पत्य प्रेम धनिया नामक स्त्री से बताते है जिसका नाम बाद मे बदल कर कबीर ने रमजनिया कर दिया था। कबीर के एक पुत्र और एक पुत्री थी। इस परिवार के पालन हेतु उन्हे करघे पर अधिक परिश्रम करना पडता था। वे घर पर बैठकर ही पैतृक व्यवसाय करते थे।

''हम घर सूत तनहि नित ताना''

सतसगी जीव होने के कारण सभी धर्मो के मतावलम्बी इनके यहा एकत्रित हुआ करते थे। एक बार इनके यहा बीस पचीस भूखे फकीर आ पडे। रोज कमाने और खाने वाले फाकेमस्त कबीर के पास उस दिन आतिथ्य सत्कार के लिए कुछ भी नही था। अत. लोई ने उन्हे चिन्तित देखकर कहा यदि आप आज्ञा दे तो मैं एक साहूकार के बेटे से जो मुझ पर आसक्त है, से रुपये ले आऊ जिससे समय की परिस्थिति का सामना किया जा सके। कबीर ने कहा जाओ, ले आओ। रुपये लेने के बाद लोई साहूकार के बेटे को उसके मनोरथ की पूर्ति करने का वचन लेकर वापस आ गई। आतिथ्य सत्कार से निवृत्त होने के पश्चात् रात्रि के समय कबीर को लोई के प्रतिश्रुत होने की बात याद आई। उस समय घोर अधकार था और वर्षा भी हो रही थी। कबीर कम्बल ओढकर स्त्री को कन्धे पर बिठाकर साहूकार के घर पहुचे। लोई को अन्दर भेज कर आप बाहर खडे रहे। साहूकार के बेटे ने जब लोई के वस्त्रों और उसके पैरो को देखा तो उसने आने के साधन के सबध ा मे प्रश्न किया। लोई द्वारा सारा वृतान्त सुनने पर वह बडा लज्जित हुआ और पैरों पर गिर कर उसने क्षमा मागी।

उपर्युक्त कथा मे अत्युक्ति भी हो सकती है क्योकि कबीर साहब पाप की कमाई कभी स्वीकार न करते ऐसा प्रसिद्ध साहित्य मनीषी पडित राम नरेश जी त्रिपाठी का मत है।

कबीर अपने पुत्र कमाल से सन्तुष्ट नही थे। इसका आभास –

"डूबा बंश कबीर का उपजा पूत कमाल।

हरिको सुमिरन छाड़ि कै ले आया घर माल।।"

मे मिलता है कुछ लोगो का ऐसा विचार है कि यह उक्ति कबीर के शिष्यो द्वारा कमाल के कबीर सम्प्रदाय के प्रति उपेक्षा भाव को देखकर कही गई है। बुढापे मे कबीर के लिए काशी मे रहना दूभर हो गया था। यश और कीर्ति वृद्धि के साथ–साथ वाद विवाद की रियाज बढानी पड रही थी। उनके स्पष्ट वक्ता होने के कारण विरोधियों की संख्या भी पर्याप्त थी। लोगो का ऐसा कथन है कि मगहर में प्राण त्याग करने से मुक्ति नही मिलती है अत. कबीर इस जनश्रुति की चुनौती को स्वीकार कर अन्त समय मे मगहर चले गये थे। इस सबध मे उन्होने कहा है :–

"जो कबीर काशी मरे तो रामहि कौन निहोरा।"

"जस काशी तस मगहर मोंसर ह्रदय राम जो होई।।"

सवत् १५७५ मे इन्होने मगहर (जिला–सत कबीर नगर, खलीलाबाद–तहसील) मे शरीर का त्याग किया था। केवल डाक्टर बडथ्वाल को छोडकर अन्य आलोचको ने कबीर का मृत्युकाल सवत् १५७५ ही माना है। मरने के बाद उनके शव को हिन्दू जलाना चाहते थे और मुसलमान उसे दफन करना चाहते थे। इसी कश्मकश मे काफी विलम्ब के बाद जब लोगो ने कफन को उठाकर शव को देखा तो उसके स्थान पर फूलो के अतिरिक्त पार्थिव शरीर का कोई भी चिन्ह शेष नहीं था। हिन्दू और मुसलमानो ने इन्ही फूलो को आपस मे बाट कर अपनी–अपनी विधियो के अनुसार इनकी अन्तिम क्रिया सपादित की।

●

तृतीय

कबीर : कवि के रूप में

कबीर कवि है अथवा नही इस पर विचार करने के पहले काव्य क्या है इस पर विहगम दृष्टि डालते हुये यदि हम अपने विचार तन्तुओ को आगे बढावे तो अधिक अच्छा होगा। सौन्दर्य और प्रेम की भॉति कविता को भी शब्दो की परिधि के अन्दर समेटने की चेष्टा करना व्यर्थ है। मुख्यत· यह अनुभूति की वस्तु है। आदरणीय पुरुषोत्तम दास जी टडन ने कविता के सम्बन्ध मे अपने विचार व्यक्त करते हुये कहा है कि "कविता सृष्टि का सौदर्य है, कविता ही सृष्टि का सुख है और कविता ही सृष्टि का जीवन प्राण है .... प्रकृति काव्यमय है, सारा ब्रह्माण्ड एक अद्‌भुत महाकाव्य है। जिस मनुष्य ने इस सार गर्भित कविता के आनन्द का स्वाद चखा "वही भाग्यवान है।"

मनुष्य सौन्दर्य प्रिय प्राणी है वह जहॉ कही भी शब्द, रूप, रस, गध और स्पर्श को रुचिकर लगने वाली पार्थिव वस्तुओ को देखता है आनन्दित हो उठता है। स्वभाववश वह उस आनन्दानुभव को दूसरो पर व्यक्त करने के लोभ को सवरण भी नही कर पाता है। वह वैखरी वाणी के माध्यम से यह प्रयास करता है कि जो कुछ मैंने अनुभव किया उसी भावना की जागृति सुनने वाले के मन मे उसी रूप मे हो जिससे तुलना मे मेरे समान ही आनन्द उसको प्राप्त हो सके। परन्तु यह कार्य **"गिरा अनयन नयन बिनु वानी"** की ही भॉति कठिन हुआ करता है। इसके लिये साधना की आवश्यकता हुआ करती है। मनुष्य की बुद्धि सीमित है उसकी भावनाओ की एक पहुॅच है परन्तु सृष्टि और सौन्दर्य, जो कविता के स्रोत हैं, अनन्त रूप मे फैले हुये हैं। अतः मनुष्य अपने बुद्धितत्व और भावतत्व के सामजस्य से इसको समेटने की चेष्टा करता है। जब वह देखता है कि बुद्धितत्व और भावतत्व के सामजस्य के बाद भी अनुभूति व्यक्त नही हो पाती तब वह कल्पनातत्व और शैली, जिसमे उसका व्यक्तित्व और उसकी आत्मा छिपी रहती है, का आधार लेकर भावो की अभिव्यक्ति करने का प्रयास करता है।

भाषा समाज सापेक्ष हुआ करती है वह भाव प्रकाशन का प्रमुख माध्यम है साधारण रूप से भाषा के दो भेद किये जा सकते हैं:— व्यक्त और अव्यक्त। विचारो को साधारण ढग से प्रकट करने की क्षमता रखने वाली भाषा व्यक्त भाषा के अन्तर्गत

आती है। अव्यक्त भाषा के उदाहरण मे हम पशु पक्षियो की बोली को सम्मुख रख सकते है व्यक्त भाषा के दो अग है प्रथम कथित, दूसरा लिखित। साधारणतया बोल चाल मे कथित (व्यक्त भाषा) ही प्रयोग मे आती है। परन्तु जब विचारो को चिरस्थायी रखने अथवा परोक्ष व्यक्ति तक पहुचाने का मन्तव्य रहता है उस समय लिखित भाषा का ही प्रयोग किया जाता है।

कबीर की भाषा :–

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि भाषा समाज सापेक्ष हुआ करती है, समाज के साथ–साथ इसमे भी परिवर्तन हुआ करते है। जिस प्रकार नदी की धारा अविच्छिन्न होने पर भी आगे बढने के साथ–साथ बदलती जाती है उसी प्रकार भाषा की परम्परा एक रहने पर भी धीरे–धीरे अस्पष्ट रूप से बदलती रहती है यही कारण है कि कबीर की भाषा और आज की भाषा मे जो व्याकरण के नियम और उपनियमो से नियत्रित है, अन्तर दिखलाई पडता है। कबीर की भाषा कथित भाषा है इसका ध्यान रख कर ही हमे उस पर विचार करना न्याय सगत होगा। वे पढे लिखे नही थे यह उन्होने स्वय **"मसि कागद छुवो नही, कलम गहो नहि हाथ"** मे व्यक्त किया है। अतः लिखित भाषा के दृष्टिकोण को ध्यान से हटाकर कबीर की भाषा का रसास्वादन करने पर जो आनन्द हम सबो को मिलता है वह अनुपमेय है। कबीर धर्म गुरु थे, उपदेशक थे, शिष्यो के सम्मुख जब जिस भावना ने उभार मारा उसमे आन्तरिक अनुभूति का सम्मिश्रण कर उसे प्रस्तुत कर दिया। कबीर की भाषा के निर्णय करने के सबध मे इतना ही कहना उचित होगा कि उनकी भाषा बोल चाल की भाषा है। अपने समय की बोलचाला की भाषा पर जिस कोटि का अधिकार कबीर की साखी और भजनो मे प्रतिलक्षित होता है वह अन्यत्र दुर्लभ है । भावो को भाषा के जिस रूप मे व्यक्त करना चाहा है उसे उसी रूप मे शिष्यो के सम्मुख रखने में वे समर्थ हुये है कबीर की साखियो और भजनो मे कई प्रान्तीय भाषाओ के शब्द मिलते है। बृज भाषा, खडी बोली, अवधी, पूर्वी (बनारस से आगे बिहार तक बोली जाने वाली भाषा) मैथिली और पजाबी आदि अनेक भाषाओ और बोलियो के शब्दो को स्वीकार कर उन्होने जो कुछ कहना चाहा है उसे सर्वांग सुन्दर रूप मे व्यक्त किया है। कबीर ने स्वयं कहा है– मेरी बोली पूर्वी है। मेरी समझ मे कबीर का मन्तव्य पूर्वी से रचनाओं में प्रयुक्त भाषा की ओर नही है वरन काशी मे रहने के कारण घरेलू बोल चाल की भाषा से ही है। आचार्य श्यामसुन्दर दासजी ने कबीर की भाषा के सबध मे निम्नलिखित विचार व्यक्त किये है।"

"कबीर पढ़े लिखे नही थे, इसी से उन पर बाहरी प्रभाव बहुत अधिक पडे। भाषा और व्याकरण की स्थिरता उनमे नही मिलती है। यह भी सम्भव है कि उन्होने

जान बूझकर अनेक प्रान्तो के शब्दो का प्रयोग किया हो, अथवा शब्द भडार की कमी के कारण जब जिस भाषा का सुना सुनाया शब्द उनके सामने आ गया हो तब वही उन्होने अपनी कविता मे रख दिया हो। शब्दो को उन्होने तोडा मरोडा भी बहुत है। इसके अतिरिक्त उनकी भाषा मे अक्खडपन है और साहित्यिक कोमलता का सर्वथा अभाव है। कही–कही उनकी भाषा बिलकुल गवारू लगती है पर उनकी बातो मे खरेपन की मिठास है जो उन्ही की विशेषता है और उसके सामने यह गवारूपन खटकता नही।''

कबीर की भाषा के सबध मे अधिकारी आलोचक प. हजारी प्रसाद जी का अभिमत इसी प्रसग के साथ लिखना अप्रासागिक न होगा। ''भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होने जिस रूप मे प्रकट करना चाहा है उसे उसी रूप मे भाषा से कहलवा लिया है बन गया तो सीधे साधे नही दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार सी नजर आती है। उसमे मानो ऐसी हिम्मत ही नही है कि इस लापरवाह फक्कड की किसी फरमाईश को नाही कर सके।''

कबीर की भाषा गवारू है की ओर जो सकेत बाबू श्याम सुन्दरदास जी ने किया है उसका उत्तरदायित्व कथित भाषा और कबीर की खीझ पर है जिसे वे पण्डित और काजी, अवधूत और जोगियो, मुल्ला और मौलवियो तक पहुचाना चाहते हैं। समग्रतः कबीर अपने युग की बोलचाल वाली भाषा के बादशाह थे।

कबीर पढे नही थे। वे अलकार, भाषा सौष्ठव, छन्द योजना आदि से अनभिज्ञ थे। काव्य मनीषियो के सत्सग से लाभान्वित होने वाले पाठको को कबीर की रचनाओ मे शुष्कता ही दृष्टिगत होगी। उन्होने कवि कहलाने की इच्छा से कुछ भी नही कहा था। उनका कथन मुख्यत: उपदेशक के रूप मे था। परन्तु अनजाने रूप मे भी भावो की अभिव्यक्ति जिस सुन्दर ढग से बन पडी है वह हिन्दी साहित्य के गौरव की वस्तु है। उनके भजन उच्चारण के दृष्टिकोण से सर्वांग सुन्दर बन पडे हैं इन भजनो की कसौटी एकमात्र ढपली ही रही है। ढपली पर जो शब्द गति के साथ चल सके वही उनका स्थान निश्चित है। पिगल शास्त्र के जानकारो को उनकी रचनाओ मे अधिक दोष मिलेंगे। परन्तु कबीर की मौलिकता और आन्तरिक अनुभूति की गहराई से जो कुछ निकला है वह बेलौस होने के कारण मन को प्रभावित करता है। उसमे हृदयतन्त्री के तारो को झकृत करने का सामर्थ्य है। What comes from the heart that appeals to the heart के आधार पर ही कबीर के भजनो का प्रचार आज भी अन्य कवियो की रचनाओ की अपेक्षा अधिक दिखलाई पडता है। पडित हजारी प्रसाद जी का निम्नलिखित कथन

-इस सबध मे महत्वपूर्ण है।

''कबीर ने कविता लिखने की प्रतिज्ञा करके अपनी बाते नही कही थी। उनकी छन्द योजना, उक्तिवैचिएय और अलकार विधान पूर्णरूप से स्वाभाविक और अयत्न साधिक है। काव्यगत रूढियो के न तो वे जानकार थे और न कायल। अपने अनन्य साधारण व्यक्तित्व के कारण ही वे सहृदय को आकृष्ट करते है। ''कबीर की अनुभूति गहरी थी। वे सतसगी जीव थे। उनकी दृष्टि पैनी थी। वे तत्व की बात को शीघ्र ही समझने वाले प्रत्युत्पन्न मति विचारक थे। जितनी गहरी डुबकी लगाकर अन्तर जगत के रहस्यो को इस कलाकार ने उद्घाटित किया है वैसे कम ही दृष्टिगत होते है। स्पष्ट वक्ता और निस्वार्थ भाव के कारण जो मन मे होता था वही बिना लगाव के वाणी द्वारा समाज मे प्रस्फुटित होता रहता था। समाज के जिस अग का चित्रण करने बैठे उसकी कलई खोल कर रख दी चाहे बुरा लगे या भला। वे निडर थे अत अपने जीवन को पवित्र बनाते हुए कहना ही उनका काम था। इस सबध मे आचार्य सुधाकर जी के मत को भी उद्धृत करना उपयुक्त समझता हू। ''साहित्य मे न केवल सत्य का उद्घाटन होता है अपितु शिव और सुन्दर का सयोग भी होता है। यह सयोग जितना ही रसमय पद्धति पर किया जाता है काव्य उतना ही अनूठा बन पडता हैं पर कबीर की रचनाये, एक विश्वास और ऐसा विश्वास, जिसका सबध पूर्णतया साहित्य से नही है, के प्रचार एव प्रसार के लिये लिखी गई हैं। कही–कही पर इन रचनाओ के भीतर काव्य के तत्वो का दर्शन भी हो जाता है अतएव कवि के रूप मे भी कबीर की एकदम उपेक्षा नही की जा सकती। पर मत प्रचारक के रूप मे उनका अपना विशिष्ट स्थान है। ''

कुछ ऐसे आलोचक भी है जो कबीर को कवि नही मानते उनमे प्रमुख आचार्य प्रवर प. सीताराम जी चतुर्वेदी का मत, जो इस सबध मे अत्यन्त महत्वपूर्ण है, उद्धृत करना उपयुक्त समझता हूँ।''

काव्य के साथ कबीर का गठबन्धन जिन्होने किया है और काव्य का अध्ययन करने, काव्यानन्द लेने वालो के लिए थे जो कबीर को भी जोड दिया गया है उन्होने न कबीर के साथ न्याय किया है और न काव्य रसिको के साथ। जो अन्तरमन से व्यक्त होता है वह हृदय को प्रभावित करता है। सर्वप्रथम नवरत्नो में कबीर की गणना की मिश्र–बन्धुओं ने और उसके पश्चात् तो सभी लोग कबीर को कवियो मे गिनने लगे। किन्तु इन विद्वानो ने यह विचार नही किया कि कबीर साधु थे और उनकी वाणी एक विशेष मत या सम्प्रदाय से प्रेरित किसी दार्शनिक पक्ष का प्रतिपादन करने वाली है और वह दार्शनिक पक्ष केवल न्याय–शास्त्र के अनुसार तर्क सिद्ध नही है, वरन् अनुभव सिद्ध हो सकती है। अतः जब तक वह

अनुभव प्राप्त नही होता तब तक वह सब वाणी निरर्थक है। फिर उस पक्ष का दार्शनिक आधार इतना गूढ, जटिल और ज्ञान–साध्य है कि केवल त्रिकुटी, कुडलिनी, षट्चक्र और नाडियो का परिचय मात्र प्राप्त कर लेने से उसका अर्थ नही स्पष्ट हो सकता और पूर्णत समझ लेने पर और साध लेने पर ब्रह्मानन्द भले ही प्राप्त हो जाए किन्तु काव्यानन्द तो नही ही मिल सकता। अत· जब काव्यानन्द नही प्राप्त करा सकता तब वह काव्य के अध्ययन से बाहर रहना चाहिये। काव्य के अन्तर्गत उसका समावेश करना काव्य–रसिको पर अनावश्यक भार डालना है और फिर कबीर के साथ भी तो न्याय नही हो सकता क्योकि जो काव्य–रसिक कबीर मे काव्य ढूढने का प्रयत्न करेगा वह निराश होगा। अत कबीर की वाणी को काव्य की परिधि मे लाना न तो न्यायसगत है न युक्तिसगत।"

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् इतना तो मानना ही पडेगा कि कबीर कथित भाषा के माने हुये अधिकारी, भाव प्रकाशन की क्षमता रखने वाले उपदेशक तथा अनुभूति के आगार थे। स्वाभाविकता, स्पष्टवादिता और भावाभिव्यक्ति के दर्शन जिस मजे हुये ढग से कबीर की रचनाओ मे होते है वे बरबस पिगल ज्ञाताओ तथा सीखकर बनने वाले रसविज्ञो को भी यह कहने के लिये बाध्य करते हैं कि कबीर कवि थे और उस कोटि के थे जहॉ केवल दो एक को छोडकर अभी तक हिन्दी साहित्य मे कोई भी नही पहुँच पाया है।

चतुर्थ

कबीर : समाज सुधारक के रूप में

साहित्य और समाज का अभिन्न सम्बन्ध है। एक का दूसरे के अभाव मे विकास रुक जाता है। कबीर के युग का समाज विच्छृखल था। साधु वेशधारी स्वार्थी लोग मनमाने रूप मे पीर और पैगम्बर बनकर समाज को पतन की ओर ले जा रहे थे। सामाजिक रूढिवादिता और विकृत परम्परा पर आधारित रीति रिवाजो को बिना बुद्धि की कसौटी पर कसे अपनाने के कारण समाज मृतप्राय हो रहा था। देशकाल और पात्र के अनुरूप परिवर्तन को अस्वीकार कर समाज एक ऐसे चौमुहाने पर आकर खडा हो गया था जहाॅ वह किस मार्ग की ओर जाये यह सोच सकने की सामर्थ्य उसमे शेष नही रह गई थी।

दो विभिन्न जातियो और तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितिओ के सघर्ष मे समाज अपने को व्यवस्थित नही कर पा रहा था। इसी समय फक्कड और खरीखोटी सुनाने वाला व्यक्तित्व लेकर कबीर समाज के बीच अभ्युदित हुए।

उन्होने जनसाधारण से लेकर तत्कालीन प्रसिद्ध सत रामानन्द जी तक का सत्सग किया और समाज की स्थिति को ठीक–ठीक समझने की चेष्टा की। देशाटन करने और जनसाधारण से सम्पर्क स्थापित करने के पश्चात् उन्हे समाज मे निम्नलिखित दोष दिखाई दिये। जिनके कारण समाज की रीढ टूट रही थी और वह आगे बढने से लाचार हो रहा था।

१. हिन्दू मुस्लिम द्वेष–भावना और जाति भेद – अपने–अपने धर्म और उपासना पद्धति की वकालत करते–करते सघर्ष की अवस्था उत्पन्न कर देना साधारण कार्य हो रहा था।

२. पीर और पैगम्बरों की वृद्धि – समाज के अवाछनीय तत्व भी साधु वेष धारण कर उपदेशक बन बैठे थे। विभिन्न विचारधाराओ का प्रादुर्भाव जिनका तात्विक दृष्टिकोण से कोई मूल्य नही था, समाज मे रहने वालो के लिये द्विविधा की स्थिति उत्पन्न करता रहता था।

अतः समाज में फैले हुए अवाछनीय तत्वों को नष्ट करने के लिये व्यंग्य और मीठी चुटकियो का सहारा लेकर कबीर उसके सम्मुख उपस्थित हुए। दोष दर्शन कराने के साथ–साथ खण्डन की जो प्रवृत्ति कबीर ने अपनायी, वह बेजोड़

थी। यही कारण है कि समालोचको को उनकी रचनाओ मे साहित्यिक कोमलता के दर्शन नही होते। समाज–सुधारको की भी कई श्रेणियॉ हुआ करती थी। कुछेक तो दोष दर्शन कराकर अन्य समाजसेवियो को उनको दूर करने के लिये प्रोत्साहित करते है। कुछेक प्रचलित दोषो का खण्डन करके समाज को नया मार्ग दिखला सकने की क्षमता न रखने के कारण शिथिल हो जाते थे और कुछेक दोष दर्शन कराने के पश्चात् खण्डन–मार्ग को अपनाकर समाज को समयोचित एव कल्याणकारी मार्ग की ओर ले चलने वाले समाज सुधारक होते है। कबीर तीसरे प्रकार के समाज सुधारक है जो समाज की कमजोरियो को ढोल बजा बजाकर प्रकट करते है, उसकी निन्दा करते है और साथ ही स्वस्थ मार्ग का निर्देश करते है और उस पर चलने के लिये प्रेरित करते है।

उनका कहना था कि परमेश्वर एक है। मूलत एक परोक्ष सर्व शक्तिमान सत्ता को जिसका कण–कण जड और चेतन सबमे व्याप्त है, कोई राम और कोई रहीम कहकर पुकारता है।

"अल्ला, राम, करीम, केशव, हरि, हजरत नाम धराया"

इसलिये हिन्दू और मुसलमानो का परस्पर लडना मूर्खतापूर्ण है। हम सब एक ही खुदा के बनाये हुए है। पचतत्व से ही हिन्दू और मुसलमान दोनो के शरीरो की रचना होती है। जैसे :–

"हिन्दू कहूँ तो हौं नहीं, मुसलमान भी नाहि।
पॉच तत्व का पूतला, गैवासैले मॉहि।।"

जाति पॉति के भेद को व्यर्थ मानते हुए उन्होने निम्नलिखित पद मे समाज के लिये समता का जो सकेत किया है वह महत्वपूर्ण है।

"सन्तन जात न पूछो निरगुनिया।
साध ब्राह्मण साध छत्तरी, साधै जाती बनियां।
+ साधन मां छत्तीस कौम हैं टेढ़ी तोर पुछनियां।
साधै नाऊ साधै धोबी, साध जाति है बरियां।
साधन मां रैदास सन्त हैं, सुपच ऋषि सोभागियां।
हिन्दू–तुर्क दुई दीन बने हैं कुछ नहीं पहचनियां।"

आगे चलकर कबीर ने मुल्लाओं और पण्डितो को भी आडे हाथो लिया है। कबीर के पदो की अपेक्षा यदि वे शासक वर्ग द्वारा दण्डित एव प्रताड़ित किये जाते तो भी इतना न तिलमिलाते।

"अरे इन दोउन राह ना पाई।
हिन्दू अपनी करै बड़ाई गागर छुवन न देई।
वेस्या के पायन तर सोवैं यह देखो हिन्दुआई।
मुसलमान के पीर औलिया मुरगी मुरगा खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहैं घर ही करैं सगाई।
बाहर से एक मुरदा लाये धोय धाय चढवाई।
सब सखियां मिल जेवन बैठी घर भर करै बडाई।
हिन्दुन की हिन्दुआई देखी, तुरकन की तुरकाई।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो कौन राह हम जाई।"

+ आचार्य क्षितिमोहन सेन ने "साधनामा" का अर्थ साधन करने वाला किया है।

उनका कहना था कि यदि मुसलमान कुरानशरीफ को और हिन्दू वेदो को परमेश्वर की वाणी कहते है तो इसमे लडने झगडने की क्या बात है ? सच्ची लगन यदि मानव के हृदय मे है तो वह अपना आचरण मनसा, वाचा, कर्मणा पवित्र बनाकर प्रभु से साक्षात्कार करने के लिये अवश्य प्रयत्नशील रहेगा, यह नही कि मन मे कपट और वाणी पर धर्माचरण करने के लिये लम्बे चौडे व्याख्या युक्त उपदेश।

"पण्डित होय के आसन मारे लम्बी लम्बी माला जपता है।
पेट में तेरे कपट कतरनी सो भी साहब लखता है।"

समाज मे वाह्याडम्बर की धूम और वास्तविक तथ्य का अभाव देखकर वे दुःखी हुए। परन्तु दु:ख को दबाकर बैठने वाले जीव वे नही थे, निडर थे, निःस्वार्थ थे। अतः व्यगपूर्ण शैली मे जो चुटकी भर ही काटी तो उसी मे पाखण्डी लोग भाग खडे हुए। झूठ के पाव ही कितने होते है ? निम्नलिखित पद मे उनके अभ्यतर का उद्गार वस्तु–स्थिति के चित्रण मे सजीव बन पडा है।

"मन न रंगाये, रंगाये जोगी कपरा।
आसन मारि मंदिर में बैठे, नाम छाड़ि पूजन लागै पथरा।
कनवा फड़ाय जोगी जटवा बढ़ौलै, दाढ़ी बढ़ाय जोगी होई गैलै बकरा।
जंगल जाय जोगी धुनियाँ रमौलै, काम जराय जोगी बनिगैलै हिजरा।
मथवा मुड़ाय जोगी कपड़ा रंगौलै, गीता बांचि के होई गैलै लबरा।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, जम दरवजवां बांधल जैबे पकरा।"

दोष दर्शन और खण्डन की वृत्ति को अपनाकर समाज सुधार के हेतु जो उक्तिया उन्होने कही, उनसे समाज मे समानता की भावना का प्रचार हुआ।

हिन्दुओ और मुसलमानो के विरोध मे भी कमी आने लगी। इसके प्रमाण स्वय कबीर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तो पर चलने वाले कबीर पन्थी हैं जिनमे हिन्दू मुसलमान दोनो ही हैं।

कबीर ने समाज के घावों की चीरफाड की, उसके अन्दर के मवाद को दबा दबाकर निकाला और अत मे उसे स्वस्थ बनाने के लिये निर्गुण भक्ति का प्रचार किया जिसकी चर्चा आगे चलकर की जायेगी परन्तु सक्षेप मे उन्होने जो शिक्षाये दी वे निम्नलिखित हैं :– जैसे– ईश्वर एक है। ससार माया से ग्रसित और मिथ्या है। उपदेशो मे आडम्बर को त्यागकर पवित्रतापूर्ण आचरण करने के लिये स्थान–स्थान पर सकेत किये है। ससार की असारता पर उनका निम्नलिखित पद कितना सरल है यह पाठक स्वय ही अनुभव करेगे।

"मन फूला फूला फिरै जगत में कैसा नाता रे।
माता कहै यह पुत्र हमारा बहिन कहै विर मेरा।।
भाई कहै यह भुजा हमारी नारि कहै नर मेरा।
पेट पकरि के माता रोबे बांह पकरि के भाई।।
लपटि झपटि के तिरिया रोवे हस अकेला जाई।"

कबीर ने समाज के फोडे को चीरने के पश्चात् मलहम रूप मे तत्व की बातो को उपदेशात्मक ढग से कहा है। उन दिनो गुरुओ की भरमार थी। गुरु के सम्बन्ध मे कि गुरु के क्या लक्षण हैं ? गुरु कैसा होना चाहिये ? आदि पर भी अपने विचार उन्होने व्यक्त किये है जिनमे सरसता और सरलता है, साथ साथ मन पर प्रभाव डालने की क्षमता भी है।

नीति सम्बन्धी कुछ उदाहरणो से उनकी स्वस्थ मनोवृत्ति का परिचय पाठको को मिल जायेगा।

(१) सॉच बराबर तप नही झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदै साँच है, ताके हिरदै आप।।

(२) जो तोको कॉटा बुवै, ताहि बोइ तू फूल।
तोहि फूल को फूल है वाको है तिरसूल।।

(३) ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करै आपहु शीतल होय।।

(४) दुर्बल को न सताइये जाकी मोटी हाय।
बिना जीव की स्वास से लोह भस्म हो जाय।।

(५) बन्दे तू कर बन्दकी तो पावै दीदार।
औसर मानुष जनम का बहुरि न बारम्बार।।

गुरु के क्या लक्षण है? गुरु को कैसा होना चाहिए? और गुरु परखने की कसौटी है क्या? इस सबध मे जो उद्‌गार कबीर ने व्यक्त किये, उनसे समाज को आगे बढने के लिए मार्ग मिला। ढोगी, पाखण्डी, और बाह्यआडम्बर को प्रधानता देने वाले पण्डितो और मुल्लाओ से समाज को राहत मिली। निम्नलिखित पदो ने समाज की आखे खोलकर गुरु की मान्यता को निर्धारित किया।

(१) बहे बहाये जात थे, लोक वेद के साथ।
पैड़ी मे सतगुरु मिले, दीपक दीन्हा हाथ।।

आचार्य प्रवर मुशीराम जी शर्मा कृत "कबीर बचनामृत" मे इसका पाठ निम्नलिखित रूप से है।

(१) पीछे लागा जाई था, लोक वेद के साथि।
आगे थे सतगुरु मिल्या, दीपक दीया हाथि।।

(२) सतगुरु की महिमा अनत, अनत किया उपगार।
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दीखावणहार।।

(३) माया दीपक, पर पतंग भ्रमि भ्रमि हवै पडंत।
कहै कबीर गुरु ग्यान थै एक आध उबरंत।।

(४) साधु तो ऐसा चाहिये, जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गहि रहै, थोथा देई उड़ाय।।

(५) निरमल भया तो क्या भया, निरमल मागै ठौर।
मल निरमल तें रहित हैं, ते साधु कोई और।।

(६) सतगुरु हमसूं रीझि करि, एक कह्या परसंग।
बरस्या बादल प्रेम का भीजि गया सब अंग।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर ने समाज के दोषों का दर्शन कराकर उनके लिए जो उत्तरदायी थे उनको फटकार सुनाने के पश्चात् जिस स्वस्थ्य कल्याणकारी मार्ग की ओर समाज को प्रेरित किया वह कम महत्वपूर्ण कार्य नही है। कबीर जैसा सर्वोगीण समाज सुधारक हिन्दी साहित्य स्रष्टाओं मे तुलसी के

अतिरिक्त कोई नही है यह निर्विवाद सत्य है। आचार्य प्रवर प मुशीराम जी ने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा कबीर की लोक–मगल दायिनी क्रियाशीलता की उपेक्षा की ओर बडे मार्मिक शब्दो मे सकेत किया है।

"केवल तुलसी को ही लोक सग्रही मानकर और कबीर की उपेक्षा करके स्वर्गीय प रामचन्द्र जी शुक्ल ने न्याय नही किया। कबीर अवश्य ही लोक सग्रही और कर्मयोगी थे। अन्तर इतना ही है कि तुलसी मे सामजस्य था, कबीर मे क्रान्ति। तुलसी मे आदर्श और मर्यादा है, कबीर मे रूढि पर आघात और निस्सार परम्परा से विद्रोह। तुलसी ने समाज के सम्मुख आदर्श रक्खा, कबीर ने विद्रोह का नेतृत्व किया। अत दोनो ने दो विरुद्ध दिशाओ से लोक सग्रह का कार्य सम्पादित किया।"

कुछेक विद्वान कबीर को समाज सुधारक गौण रूप मे स्वीकार कर मुख्यत उन्हे साधक मानते है और जिसे उन्होने जीवन क्रम के साथ खुली आखे होने के कारण अर्जित किया था। इस सबंध मे गुरुवर मुशीराम जी शर्मा का अभिमत उद्धृत करना उपयुक्त समझता हू।

"यह सत्य है कि वे व्यक्तिगत साधना के साधक एव प्रचारक थे, परन्तु उनका अपना व्यक्तित्व भी तो समाज सुधार की लहर की उपज था। तथ्य ही भावनाओ को प्रेरित एव विकसित करते हैं, विचार या भावनाये तथ्य को पैदा नही करतीं।"

पंचम

सिद्धान्त और मार्ग

कबीर उन पहुचे हुए सतो मे थे जिनका नाम मानव जाति श्रद्धा से लिया करती है। आलोचको द्वारा कथित इस ज्ञानमार्गी भक्त का उद्‌देश्य अपने अभ्यतर को निर्मल करना था। प्रभु के आस–पास ही कबीर अपने व्यक्तित्व का अस्तित्व मानते हैं। साहित्य पर धर्म का प्रभाव सदैव ही दृष्टिगत होता रहता है। धार्मिक विश्वासो पर ही जाति का उत्थान पतन निर्भर रहता है, यह इतिहास के अध्येता भलीभाति जानते है। इस प्रसग मे विचारणीय प्रश्न यह है कि जो चिरतन भाव कबीर के साहित्य मे पाया जाता है उसका उद्‌गम कहा से हुआ है। यह बात तो साधारणतया समझ मे आती है कि धर्म का साहित्य के साथ विकास का मूल सिद्धान्त अन्तः और बाह्य का सामजस्य है। प्रसिद्ध साहित्य मीमासक बाबू पदमलाल पुन्नालाल बख्शी ने 'साहित्य और धर्म' नामक लेख मे क्रमबद्ध विवेचन के पश्चात् धर्मज्ञान के तीन उपादान निर्धारित किये है। (१) ईश्वर–विश्वास (२) अदृष्ट लोक पर विश्वास (३) पाप–पुण्य की धारणा।

मानव जन्म से ही जिज्ञासु रूप मे दृष्टिगत होता है। अनन्त के रहस्यो की जानकारी के अभाव मे ही मनुष्य मे धर्म–भाव की उत्पत्ति होती है मैक्समूलर का भी यही मत है कि सभी धर्मों के मूल मे अनत की धारणा विद्यमान है। कबीर के युग मे धार्मिक सम्प्रदाय, जिनमे तात्विक बातों में समानता थी परन्तु दुरुहता एव मुल्लाओ तथा पण्डितो के पाखण्डो तथा मनगढन्त विश्लेषणो के कारण वास्तविक धर्म के रूप मे स्वीकार नही किये जाते थे।

योगियो की धूम थी। सच्चे अर्थों मे योग मार्ग, उपाय और आचरण पर नियत्रण रखकर हमे साधना परिस्थितियो को पार कराता हुआ अलौकिक सत्ता की ओर ले जाता है और योगी जब अपनी साधना के परिणाम स्वरूप ज्ञान प्राप्त कर लेता है तब योग की क्रिया को तिलाजलि दे देता है। यही कारण है कि हठयोग–साधना को सम्पूर्ण प्रश्रय देते हुए भी कबीर जब ज्ञानी की चर्चा करते हैं तो योग की क्लिष्ट साधना का विरोध करने लगते हैं। कबीर ने परमात्मा का निवास ब्रह्माध्र मे बताया है परन्तु स्थान–स्थान पर योग–समाधि की अपेक्षा सहज समाधि को तरजीह देते हैं।

"आसन कौन दूर कर बौरे, छाड़ कपट हित हरिभज औरे।"

कबीर ने योग मार्ग का समर्थन किया है पर उनके और नाथ सम्प्रदाय द्वारा प्रतिपादित योग–साधना मे भिन्नता थी। कबीर की साधना मे प्रेम और भक्ति की प्रधानता थी। योग और भक्ति दोनो ही का लक्ष्य परमसत्ता की ओर उन्मुख रहता है। परन्तु कबीर का जितना आत्मससर्ग वैष्णव सम्प्रदाय तथा भक्त की आवेगपूर्ण धारा से था उतना हठयोगियो से नही। कबीर ने सत्सग से वेदान्त, उपनिषदो और पौराणिक, कथाओ का ज्ञान प्राप्त किया था, जो भक्ति भावना के विकास मे सहायक हुआ करती है। साथ–साथ कबीर को यौगिक क्रियाओ से भी जानकारी थी। वे इगला, पिगला, सुष्मना, षट्चक्र आदि से अच्छी तरह परिचित थे और उन्होने अपने भजनो मे इनका उल्लेख भी किया है। वे शास्त्रो के विरोधी थे– **"गीता पढ़के होहिगै लबरा"** से यही आभास मिलता है। वे सत्कर्म पर अधिक जोर देते थे। ज्ञानी होकर भी सत्कर्म न करना उन्हे कष्टकारक ही प्रतीत होता था। वे शैव थे अथवा वैशणव यह निर्णय करना आसान नही है। गोरखनाथ के अनुयायी, जिनकी साधना का मूलाधार पातजलि का योग सूत्र है, शैव मतावलम्बी थे। परन्तु कबीर निर्गुण और निराकार की उपासना करने के साथ–साथ 'राम' शब्द का अपने भजनो मे प्रयोग करने से नही चूके हैं। कबीर वैष्णवो से प्रभावित हैं इस मत के समर्थको का कथन है कि वे रामानन्द जी के शिष्य थे और 'राम' शब्द ही उनका गुरु मत्र था। दूसरे 'राम' का प्रयोग उन्होने चाहे दूसरे ही अर्थ का बोध कराने के लिए भले ही किया हो परन्तु उनके आलम्बन की प्रतिष्ठा और भावोद्धार वैष्णव भक्ति के ही समानान्तर है। दूसरे शब्दो मे कबीर की भक्तिपूर्ण अभिव्यक्तियो को हम परम्परा से प्राप्त लोक–पूरक शभुवाद कह सकते है। दोनो ही ससार के आगे सन्यासमार्ग की शिक्षा देते है। अहिसा, स्वेच्छाचरण और स्वभाविक जीवन अपनाने की प्रेरणा दोनो ही सम्प्रदायो से उठी है। सहजयानी सम्प्रदाय के द्वारा प्रभावित होते हुए भी दोनो सम्प्रदायों ने जीवन की साधना के गूढ रुप ग्रहण नही किये हैं। डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सन्तो की सहज जीवन दृष्टि के प्रति टिप्पणी करते हुए लिखा है कि वे जीवन के नैमित्तिक कार्यो के साथ शाश्वत धर्म साधना का विरोध नही चाहते थे। शकर के अद्वैतवादी सिद्धान्त से भी कबीर प्रभावित थे।

श्री शकराचार्य जी ने माया के सबंध मे अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है "अज्ञान से मूल ब्रह्म मे कल्पित किये हुए नाम रूप को ही श्रुति और स्मृति ग्रन्थो मे सर्वज्ञ ईश्वर की माया शक्ति अथवा प्रकृति कहा है।"

कबीर भी कहते हैं–

"माया मुई न मन मुवा, पर मरि गया शरीर।

आसा त्रिष्णा न मुई, यौ कह गया कबीर।"

इनके अनुसार केवल परब्रह्म ही सत्य है। और मनुष्य की आत्मा ही ब्रह्म है तभी तो–

"मो का कहा ढूढ़ै बन्दे मैं तो तेरे पास रे"

दूसरे लोगो का मत है कि रामानुज के शिष्य होने पर भी सिद्धान्त रूप मे वे शकराचार्य जी के ही प्रवर्तक रहे है। शकराचार्य जी के सूत्रो की ही व्याख्या कबीर के पदो मे मिलती है।

"साधे ब्रह्म अलख जगाया, जब आप–आप दरसाया।

बीज मध्य ज्यों वृक्षा दरषै, वृक्ष मध्ये छाया।।

श्वासा मध्ये शब्द देखिये अर्थ शब्द के मांही।

ब्रह्म ते जीव जीव ते मन यो न्यारा मिला सदाही।।

आप ही बीज वृक्ष अकुरा आप ही फूल फल छाया।

आप ही पूर्ण किरन परकासा आप ब्रह्म जीव माया।।

साख्य के सिद्वान्त– प्रकृति और पुरुष के योग से ससार का निर्माण हुआ है– का भाष्य ही उपर्युक्त पद मे दिखलाई पडता है।

कबीर की अर्चना–विधि, स्थूलता के अन्तर्गत आने वाली नही है वे उसमे प्रेम की अपेक्षा आडम्बर के दर्शन करते हैं। जल, चन्दन, अक्षत, फूल और फल आरती के स्थूल उपादानो मे उनका विश्वास नही था। उनकी आरती विधि निम्नलिखित पद मे उन्ही के द्वारा वर्णित है।

"ऐसी आरती त्रिभुवन तारे,

तेज पुज तम...................

पाती पंच पुहुप कर पूजा।

देव निरंजन और न दूजा।।

दीपक ज्ञान शब्द धुनि घण्टा।

पर पुरुष तब देव अनन्ता।।"

उनकी उपासना विधि सगुण ओर यौगिक न होकर निर्गुण थी। उनके राम दशरथ सुत राम न होकर अखिल ब्रह्माण्ड नायक परम–परमानन्द सत् चित् आनन्द के स्रोत थे। जो सज्जन कबीर को योगी रूप में प्रतिष्ठित देखना चाहते हैं। उनके लिए कबीर उस रूप मे यदाकदा दिखलाई पडते है परन्तु वे हठयोगी न होकर

अध्यात्म योगी के रूप मे सम्मुख उपस्थित होते है–

हेरत हेरत हे सखी रहा कबीर हेराइ।

बूद समानी समद मे, सो कत हेरी जाइ।।

कबीर सिद्ध थे। इस सबध मे गुरुदेव मुशीराम जी शर्मा का मत उन्ही के शब्दो मे लिखना उपयुक्त समझता हूँ –

"ब्राह्म पुराण मे कल्योपनिषद की व्याख्या के प्रसग मे आठ सिद्धियो का वर्णन है। तीन सिद्धियॉ तो ऊह, शब्द और अध्ययन नाम की, तीन दुखविघात नामवाली तथा दो सुहृत्प्राप्ति, आप्ति और दान नामवाली है। जिज्ञासु को उपदेश के बिना जन्मातर के सस्कार से जो ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, वह ऊह नाम की सिद्धि है। बिना प्रयत्न केवल श्रवण मात्र से ही जो ज्ञान उत्पन्न हो जाता है वह शब्द नाम की सिद्धि है। शास्त्र के अभ्यास से जो ज्ञान उत्पन्न हो जाता है उसे अध्ययन कहते है। कबीर को ऊह और शब्द नाम की दो सिद्धियॉ प्राप्त थी। प्रथम का तो उल्लेख **"परचा को अंग"** की निम्न साखी मे है" –

देखो कर्म कबीर का, कछु पूरब जनम का लेख ।

जाकर महल न मुनिलहै, सो दोसत किया अलेख।।

शब्द सिद्धि का प्रमाण तो उनकी रचनाओ मे प्रचुरता के साथ मिलता है।

कबीर पाखड एव अभिमान को त्यागकर मार्ग मे पैरो के नीचे दब जाने वाली रोडी बन जाने का उपदेश देते हैं, जिसे किसी के ठुकराने की परवाह नही।

"कबीर कूता राम का मुतिया मेरा नाऊँ।

गले राम की जेवड़ी जित खैंचे तित जाऊँ।।"

प० हजारी प्रसाद की मुतिया के सम्बन्ध मे व्याख्या करते हुए कहते है – "अनुमान किया जाय कि उनका बचपन का नाम मुतिया था तो असम्भव नही। पर मुतिया नाम बडा जानदार है उस नाम मे कुत्ते की सारी निरीहता मानो दुम हिलाती हुई सामने खडी है।" पडित मुशीराम जी इससे सहमत नही है वे इसमे कबीर का सत स्वभाव, जो नीर–क्षीर विवेकी हॅस के समान है, का दर्शन करते है। उनका कथन है कि 'वस्तुत· मुतिया नाम का दूसरा ही रहस्य है। इससे कुत्ते की निरीहता नही वरन् कबीर की निरन्तन ज्ञान स्वरूप रहने की भावना प्रगट होती है। कबीर ज्ञानी हैं, स्थित–प्रज्ञ हैं, सिद्ध पुरुष हैं। वे अपने ज्ञान को कभी नही भूल सकते। मुतिया का अर्थ है – ज्ञान स्वरूप मोती। मोती ज्ञान का प्रतीक है।

कबीर ज्ञानी थे उनका ज्ञान शास्त्रीय (ज्ञान) नहीं था। जनश्रुति के

आधार पर टिका हुआ ज्ञान अभ्यतर के सामजस्य से निखर उठा था। वैसे तो उपर्युक्त विवेचन के आधार पर उनके सिद्धान्तो के कई पहलू सामने आते हैं परन्तु मुख्यतया निर्गुण सत कवियो मे अग्रणी इस सन्त का एक ही सिद्धान्त था 'ईश्वर एक है और उसे भेदभाव त्यागकर सबको भजने का अधिकार है।'

ईश्वर की प्राप्ति के लिये शास्त्रीय अध्ययन की आवश्यकता नही है केवल साधना और लगन के बल पर ईश्वर की प्राप्ति सभव है।

''तू कहता कागज की लेखी मैं कहता आखिन की देखी'

''पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय
एकै आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय''

इसके साथ ही साथ उनकी खण्डन की प्रवृत्ति, जो सैद्धान्तिक शिक्षाओ का दामन पकडे हुये ही चली है, महत्वपूर्ण है । धर्म के नाम पर अनाचार को उन्होने जी भर कर कोसा है ।

''दिन को रोजा रखत हैं, रात हनत हैं गाय''
''काकर पाथर जोड़ के मस्जिद दई बनाय
तापर मुल्ला बांग देत क्या बहरा हुआ खुदाय''
''पाथर पूजै हरि मिलै, तो मैं पूजूँ ताको पीसा खाय''

उपर्युक्त पदो मे कबीर का निर्गुण सिद्धान्त भी मुखरित हुआ है।

षष्ठ

कबीर की रहस्यानुभूति

कबीर की रहस्यानुभूति की चर्चा करने के पहले यदि हम रहस्यवाद को मोटे रूप मे समझ ले तो विषय स्पष्ट होकर हृदयग्राही बन सकेगा ।

आचार्य मुशीराम जी शर्मा के शब्दो मे रहस्यवाद "साहित्यिक धारणाओ और मान्यताओ के अनुसार उस मन. प्रवृत्ति का प्रकाशन है जो अव्यक्त और सर्वव्यापी परब्रह्म से परिचित होने के लिये प्रयास करती है । यह प्रवृत्ति मन का गुण है । इसका प्रकाशन काव्य मे होता है । यह प्रयास जिस भाव साधना के सोपानो से अग्रसर होता है, वह एक उच्च स्तर की मानसिक स्थिति होती है । यह स्थिति साधारण जन के लिये रहस्य है ।"

जिस प्रकार कबीर का कविता करना लक्ष्य नही था उसी प्रकार कविता मे रहस्यवाद के विधान की व्यवस्था करना उनका कभी भी ध्येय नही रहा है । अनजाने मे भाव प्रकाशन के समय जो निकल पडा, वह चाहे कविता हो अथवा रहस्यवाद कबीर को इसकी चिन्ता नही थी । उनका केवल एक ही मन्तव्य था कि जो कुछ मैं अनुभव करता हूँ उसकी अभिव्यक्ति समाज के सम्मुख होनी चाहिये और उसमे समाज–पोषक तत्वो की प्रधानता का समावेश करना ही उनका मुख्य लक्ष्य रहता था ।

आगे चलकर कबीर की ख्याति जब विकसित हुई और साथ ही साथ पाखडियो तथा धर्म के नाम पर अनाचार और अत्याचार करने वालो की पोल खुलने लगी तो समाज के अवाछनीय तत्वो का एक गुट कबीर के प्रतिद्वन्द्वी रूप मे तैयार हो गया । सामूहिक रूप मे एकत्रित होकर मतावलम्बियो और उनके गुरूओ के बीच वाद विवाद हुआ करता था । जो एक दूसरे को अवाक् कर दे उसी की महत्ता जनसमुदाय शिरोधार्य करता था । कबीर ने ऐसी ही परिस्थितियों का सामना करने के लिये उलटवासियॉ भी कही हैं । प. रामनरेश जी उलटवासियों के पीछे कबीर की जनसमुदाय को आकृष्ट करने वाली भावना को देखते हैं और समर्थन मे कबीर के निम्नलिखित पद का उल्लेख किया है–

"ठगिनी क्या नैना झमकावै, कबिरा तेरे हाथ न आवै ।

कद्दू काटि मृदंग बनाया नीबू काटि मंजीरा।।

सात तरोई मंगल गावैं नाचै बालम खीरा ।

भैंस पदमिनी आसिक चूहा मेढक ताल लगावै ।।

चोली पहिरि गदहिया नाचै ऊँट बिसुन पद पावै ।।

आम डार चढ़ि कछुआ तोडै गिलहरि चुनि–चुनि लावै ।

कहैं कबीर सुनो भाई साधो, बगुला भोग लगावै ।।

किसी भी स्रोत के मूल का पता लगाने की इच्छा से जिस प्रकार हमे प्रवाह के विरुद्ध चलना पडता है ठीक उसी प्रकार सत सृष्टि के मूलाधार की प्राप्ति की इच्छा से उधर बढे है। प० चन्द्रबली जी पाण्डेय उलटवासियो की व्याख्या करते समय लिखते है कि "सहस्रार से मूलाधार तक जो अमृत प्रवाह है उसके अनुकूल चलने से परमपुरुष की प्राप्ति नही हो सकती। उसकी उपलब्धि के लिए आवश्यक है कि इस प्रवाह की प्रतिकूल दिशा मे प्रस्थान हो। यानी मूलाधार से चलकर सहस्रार से परमपुरुष का साक्षात्कार या समागम किया जाये। इसी प्रस्थान या यात्रा को जब काव्य या कूट का रूप दे दिया जाता है तब वह हमारे सामने उल्टी के रूप मे आ जाती है ओर हम इस भेद से अनभिज्ञ रह जाने के कारण विस्मय मे पड जाते है। पण्डितो को अवाक कर अपना आतक जमाने मे इससे बहुत कुछ काम लिया गया और कभी–कभी इसको निरी पहेली या खिलवाड का रूप मिल गया।"

उलटवासियो को जब कविता के माध्यम से जनसमुदाय के बीच रखने की आवश्यकता सतो ने समझी अथवा मन की मौज मे ही कह उठे तो उन्होने पारिवारिक प्रतीक और सकेतो का आश्रय लिया। कबीर भी इसके अपवाद नही है। उन्होने भी ऐसे पद जिनमे परिवार की मर्यादा के उल्लघन का भाव प्रकट हुआ है रचे है। जैसे–

"जलि जाई, थलि उपजी, आई नगर मैं आप।

एक अचंभा देखिया, बिटिया जायो बाप।।"

"बाबल मेरा व्याह करि, बर उत्तम ले चाहि,

जब लग बर पावै नही, तब लग तूं ही व्याहि।"

कबीर ने प्रतीकात्मक शैली से रहस्यवादी भावो को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। परन्तु प्रतीकात्मक शैली और रहस्यवाद दोनो मे अन्तर है। वह रहस्यवादी काव्य का एक अभिन्न अग है। परन्तु प्रतीको के प्रयोग से कविता रहस्यवादी समझी जाने लगे। यह उचित नहीं है। कबीर ने प्रतीको का प्रयोग सुन्दर किया है। जैसे–

"बाढ़ी आवत देखकर तरुवर डोलन लाग।
हमैं कहै कि कुछ नही पंखेरू घर भाग।।

इस दोहे मे बाढ=बढई=मृत्यु, तरुवर=पेड=शरीर, पक्षी=तरुवर पर निवास करने वाले=आत्मा का प्रतीक है।

आचार्य मुशीराम जी द्वारा इसकी व्याख्या, जो समीचीन है, उपस्थित कर रहा हू – इस दोहे मे कम्पित वृक्ष से वृद्ध शरीर का चित्र उपस्थित हो जाता है और सासारिक जीवन की नश्वरता प्रगट हो जाती है। इस दोहे की शैली प्रतीकात्मक है पर इसमे रहस्यवाद नही है। कबीर ने इस शैली मे अनेक दोहे लिखे हैं। पर वे सब रहस्यवाद की कोटि में नही आते। कबीर मे विचित्र अन्योक्तियो और रूपक मिलते हैं जिनकी परम्परा सिद्धो मे शताब्दियो से चली आती थी। कबीर ने शैलीगत कथन का अनूठापन इसी परम्परा से ग्रहण किया था। **"रहना नाहिं देश बिराना है"** –यह पद भी प्रतीकात्मक शैली का सुन्दर समावेश लिए कबीर की वाणी से मुखरित हुआ है।'

चिन्तन के क्षेत्र का अद्वैतवाद भावना के क्षेत्र मे आकर रहस्यवाद बन जाता है।' अद्वैतवाद सिद्धान्त के प्रतिपादक भगवान शकराचार्य जी थे जिन्होने ब्रह्म की एकमात्र सत्ता को स्वीकार किया था। 'एकोऽहं द्वितीयो नास्ति' ही उनका मूलमत्र था। आत्मा और परमात्मा की एकता के पूर्ण ज्ञान को अद्वैतावस्था कहते हैं। कबीर शकराचार्य जी से प्रभावित थे। यह उनके सिद्धान्तों पर विचार करते समय विचार किया जा चुका है। अतः कबीर की रचनाओ में, चाहे वे साखी हों अथवा पद, रहस्यानुभूति का पुट अवश्य मिलता है परन्तु कबीर ने आत्मा और परमात्मा की वियोगावस्था का ही वर्णन मुख्य रूप से किया है।

वे अज्ञात सत्ता से अनेक प्रकार के नाते मानकर उससे साक्षात्कार करने के लिए व्याकुल हो उठे हैं। सासारिक दृष्टिकोण से पति पत्नी का सबंध अन्य संबंधों की अपेक्षा अधिक टिकाऊ माना गया है। अतः कबीर अपने आराध्य देव से पत्नी रूप मे ही निवेदन करते हैं। कबीर की विरहिणी कोई लौकिक नायिका नही है, वह आत्मा है। विरहिणी अपने पति के वियोग में दुखी है। उदाहरणार्थ–

"राम मोरे पीव मैं राम की बहुरिया"

"ए अखियां अलसानी पिया हो सेज चलो।
खंभा पकरि पतंग अस डोले, बोले मधुरी बानी।।
फूलन सेज विछाय जो राखी, पिया बिना कुम्हिलानी।
धीरे पांव धरो पलंगा पर, जागत ननद जेठानी।

कहत कबीर सुनो भाई, लोक लाज विहलानी।।"

विरहोपरान्त जब मिलन की बेला आती है उस समय का आनन्द अवर्णनातीत होता है। इसे कबीर ने निम्नलिखित दोहे मे व्यक्त किया है –

"पार ब्रह्म के तेज का कैसा है उपमान।

कबि कू शोभा नहीं देख्या ही पर बान।।"

कबीर की साधना का केन्द्र बिन्दु अज्ञात सत्ता के रहस्य को जानना ही रहा है वे उसी के लिए आकुल व्याकुल होकर तडपते रहते है। उनकी दृढ टेक है कि "रात्रि मे दीख पडने वाले तारो के समान मेरे शत्रु चाहे अगणित ही क्यों न हो, धड सूली एव सिर कगूरे पर क्यो न रक्खे हो, किन्तु मैं तुझको किसी प्रकार भी भूल नही सकता।"

कबीर की भावना अन्तर्मुखी थी। वे आन्तरिक अनुभूति के बलबूते पर ही अज्ञात रहस्यो को टटोलने की चेष्टा मे रत थे। परन्तु इसका यह अर्थ नही कि उन्होने प्रकृति मे ईश्वरीय सत्ता का आत्मसस्थापन नही माना था। उनके निम्नाकित पद और साखी मे इसका समर्थन मिलता है।

जल मे कुंभ कुंभ में जल है बाहर भीतर पानी।

फूट कुंभ जल जलहि समाना यह तिथ कहौ गियानी।।

आदै गगना अन्तै गगना, मध्ये गगना भाई।

कहै कबीर करम किस लागै झूठी एक उपाई।।"

❀ ❀ ❀

गगन गरज बरसै अमी, बादर गहिर गंभीर।

बहुदिसि दमके दामिनी, भीजै दास कबीर।।"

कबीर की रहस्यानुभूमि की आधार–शिला निम्नस्थ विचार बिन्दुओ के रूप मे प्रतिलक्षित हुई है।

(१) अद्वैतवाद।

(२) पत्नी रूप मे प्रेम–भावना का निवेदन।

(३) जन्म जन्मातर पर विश्वास।

(४) आत्मा अमर है।

(५) सृष्टि के कण कण में ब्रह्म का निवास मानना।

(६) संसार नश्वर है।

कुछ लोग कबीर की रहस्यानुभूमि मे सूफी सम्प्रदाय का प्रभाव मानते हैं। इस सबंध में श्रद्धेय पं. मुशीराम जी का मत जो बहुत पुष्ट और तर्कपूर्ण हैं उसे

ही उपस्थित कर रहा हू। "जो कबीर के रहस्यवाद पर सूफी सम्प्रदाय का प्रभाव मान कर चलते है उन्हे सोचना चाहिए कि कबीर के विचार और भावनाओ जैसे ससार की क्षणभगुरता, आराध्य की रूपहीन सत्ता पर पति के रूप मे अव्यक्त परमात्मा की भक्ति का क्या आधार है? ज्ञान का अश वेदान्त मान लेने पर और निराकार को इस्लामी एकेश्वरवाद तथा प्रेमपीर को सूफी अश मान लेने पर भी बात नही सुलझती। कबीर की भक्ति का क्या रूप है? कबीर की भक्ति निश्चित रूप से वैष्णव भक्ति से अत्यधिक प्रभावित या साक्षात वैष्णव भक्ति ही है, जिसे प्रेम भक्ति कहा जाता है। कबीर ने सूफियो की प्रशसा अपनी साखियो मे कही नही की है, और न उनको अपना सगी ही बताया। इसके विपरीत वैष्णवो की प्रशसा, उन्होने अनेक स्थानो पर की है और उन्हे अपना सगी बताया है। कबीर के कुछेक भजनो मे ही पति रूप से प्रेम भावना का प्रस्फुटन हुआ है। परन्तु इससे ही कबीर सूफी रहस्यवाद से प्रभावित थे, ऐसा मानना न्याय सगत नही है।"

प. चन्द्रवली जी पाण्डेय कबीर के पदो मे केवल प्रतीकात्मक शैली और उलटवासियो का ही अस्तित्व पाते हैं। वे कबीर को रहस्यवादी कवि नही मानते हैं और यदि थोड़ा बहुत स्वीकार भी करते है तो नीरस और शुष्क रूप मे। उनका कथन है कि –"उनका रहस्यवाद प्राय· आध्यात्म पर ही अवलिम्बत है। कुछ–कुछ मुख्य बातो का कल्पित नाम रखकर कविता करना रहस्यवाद नही है। रहस्यवाद का संबध भाव से ही है, भाव–विधान से नही।"

परन्तु आचार्य मुशी राम जी का मत इससे कुछ अशो मे भिन्न है उनका कथन है कि "उलटवासियो कथन का एक प्रकार है पर वे भी रहस्य का सृजन करने मे सहायक हुई है। पर रहस्यवाद की वास्तविक भूमिका तो उलटी धारा से ही प्रारम्भ हुई है जिसमे संत कबीर ने साधक को प्रवृत्ति–मार्ग से हटकर निवृति पथ पर चलने के लिए आमन्त्रित किया है। मन की जो धारा बाहर की ओर है उसे उलट कर अन्दर की ओर कर दो, तभी उस रहस्यमयी भाव–भूमि मे प्रवेश हो सकेगा।"

कबीर की रहस्यानुभूति के नीरस और शुष्क होने का कारण मुख्यतः उनका अन्तर्मुखी होना है। कबीर की रहस्यमयी अनुभूति का मान धीरे–धीरे बढ रहा है महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने आचार्य क्षितिमोहन सेन के सग्रह मे १ से लेकर १०० तक के पदो का अनुवाद कर पाश्चात्य आलोचको को भी कबीर की रहस्यानुभूति का आनन्द उठाने के लिए जो स्तुत्य कार्य किया है उससे कबीर के सबध में विभिन्न दृष्टिकोणो से विचार करने के लिए मार्ग खुल गया है।

सप्तम

कबीर की साखी

कबीर की रचनाओ (कथित) का सग्रह बीजक के नाम से प्रसिद्ध है। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, द्वारा प्रकाशित तथा डा श्यामसुन्दरदास जी द्वारा सम्पादित 'कबीर ग्रथावली' मे भी बीजक की ही भाति साखी, पद और रमैनी तीन विभाजन स्वीकार किये गये हैं साखी दोहो के अन्त रूप और रमैनी चौपाई और दोहो मे रामचरित मानस की ही भाति लिखी गई है।

कबीर की साखियो की सख्या सबध मे मतभेद है। और यह होना भी ठीक है। कथित रचनाओ का आधार केवल जनश्रुति और शिष्य परम्परा ही रहती है। और यह लिखित रचनाओ की अपेक्षा अधिक परिवर्तनग्राही हुआ करती है। इससे साखियो की वास्तविक सख्या क्या थी यह निश्चित करना असम्भव ही सा है। डाक्टर श्याम सुन्दर दास जी की कबीर ग्रथावली मे, जिसका आधार स. १५६१ की प्रति जो कबीर के शिष्य मलूकदास जी की सग्रहीत बताई जाती है अत· प्रामाणिक समझना न्यायसगत है परन्तु प्रो. जुलेक्लाश का मत जो इस सबध मे महत्वपूर्ण है उसकी प्रामाणिकता को सदिग्ध कर देता है–

"सम्पादक ने जो फोटो और प्रति–चित्र दिया है उससे इस बात का पता लगा लेना सरल है कि लिपि की मिती किसी दूसरे हाथ की लिखी है। सम्भव है हस्तलेख के दोनो लेखक समसामयिक ही रहे हो।"

सवत् के ही आधार पर पुस्तक की प्रामाणिकता सिद्ध हो रही थी परन्तु लिखावट का अन्तर ज्ञान हो जाने पर यह प्रति पूर्णरूपेण प्रमाणिक है, इसे डा. हजारी प्रसाद जी भी नही मानते हैं। कुछ भी हो कबीर की साखियो को समाविष्ट करके जो भी सग्रह पाठको के सम्मुख आये है उनमे किसी मे ८१० और किसी मे ८१६ साखियो की सख्या लिखी हुई हैं। विषय के दृष्टिकोण से साखियो को अंगो अथवा अध्यायो मे विभाजित किया गया है। सख्या की भाति ही अगो के विभाजन के सबध मे भी आलोचना एक मत नहीं हो पाये हैं कुछ लोग ५६ और कुछ लोग ६६ अगो का विभाजन स्वीकार करते हैं।

कबीर की जो प्रतिपाद्य भावनायें हैं उन्ही का वर्णन साखियो मे मिलता है। प. मुशीराम जी ने इनको दो भागो मे विभाजित किया है आध्यात्मिक और

नैतिक। आध्यात्मिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत आत्मा परमात्मा और अनात्मा की चर्चा की गई है। नैतिकता का वर्णन करते समय उनकी वाणी मे सचेत होने के लिए स्थान–स्थान पर साधारणतया पवित्र जीवन की ओर सकेत किया गया है। कबीर ने आध्यात्मिक दृष्टिकोण को व्यक्त करते समय भारतीय परम्परा को ही अपनाया है। आत्मा को ही स्त्री रूप मे स्वीकार कर उन्होने उसके चार भेद किये हैं–

(१) कुमारी कन्या।

(२) सुन्दरी।

(३) विरहिणी।

(४) सती।

जब तक आत्मा का परब्रह्म से परिचय नही होता है उसे कुंवारी कन्या का रूपक देकर कबीर ने साखियो मे वर्णन किया है।

"जब लग पीव परचा नहीं, कन्या कुंवारी जाणि।

हथ लेवा हौंसे लिया, मुसकल पडी पिछांड़ि।।"

परिचय होने के पश्चात भी आत्मा को यह विश्वास नही होता कि परब्रह्म परमात्मा उसे स्वीकार भी करेगा अथवा नही। द्विविधापूर्ण स्थिति तथा पिया मनभावन की बतियां से अनभिज्ञ होने के कारण आत्मा का सकोच और असमंजस साखियो मे स्पष्ट दिखाई पडता है।"

मन प्रतीत न प्रेम रस न इस तन में ढंग।

का जाणैं उस पीव सूं, कैसे रहसी रंग।।"

"जा कारणि मैं ढूंढ़ता सनमुख मिलिया आई।

धन मैली पिव उजला लागि न सकौं पाई।।"

विरहिणी आत्मा की वियोग–स्थिति का वर्ण करते हुए कबीर कहते हैं–

"कबीर सूता क्या करे, काहे न देखै जागि।

जाकर संग तैं बीछुड़ पर ताही, के संग लागि।।"

इसी प्रकार आत्मा का स्त्री के रूप मे भी चित्रण साखियो मे हुआ है जैसे–

"सती विचारी सत् किया, काठौं सेज बिछाई।

ले सूती पिय आपणा, चहूं दिस अगिन लगाई।"

इसी प्रकार परमात्मा के सबध में निर्गुणवाद की प्रधानता लिए हुए उनकी वाणी अन्य वादो को भी गर्भ मे समाविष्ट किये हुए मुखरित हुई है। वे एकेश्वरवाद,

अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत, सूफी आदि मे निरगुनिया ब्रह्म का ही स्वरूप दृष्टिगत करते हैं।

वे नाम और सिद्धान्तो का भेद हटा कर मानसिक अर्चना का ही महत्व स्वीकार करते है।

साखियो मे परमात्मा के नाम और धाम की चर्चा उन्होने की हैं वे राम और रहीम मे एक ही परमसत्ता का आविर्भाव मानते है।

कस्तुरी कुंडलि बसै, मृग ढूढ़ैं बन मांहि।

ऐसे घट–घंट राम हैं, दुनिया देखै नाहि।।

कबीर पूछे शाम कूं सकल भवन पति राई।

सबही करि अलगा रहौ, सो विधि हमहि बताई।

धाम– हिरदा भीतरि हरिबसै, तू ताहीं सौ लौ लाई।

महत्ता– सांई सू सब होत है बंदे कै कुछ नाहि।

राई कै परबत करैं, परबत राई मांहि।।

अनात्म अथवा माया– कबीर की साखियो मे अनात्म अथवा माया की भावना को पूर्णरूपेण प्रश्रय मिला है। वे विशेषतया भगवान शकराचार्य जी के अद्वैताद्वैत सिद्धान्त से प्रभावित थे।

जन्म के साथ माया का लगाव अनवरत रूप से रहता है। इसे कबीर ने नीचे की साखी में व्यक्त किया है।

माया मुई न मन मुवा, मरि मरि गया शरीर।

आसा त्रिष्णा न मुई, यों कहि गया कबीर।।

नैतिकता सबधी साखियों मे ससार की असारता, सतसंग की महिमा तथा अतःसाक्ष्य आदि भावनाओ की ही पुष्टि की गई है।

कबीर नौबति आपणे, दिन दस लेहु बजाई।

ए पुर पाटन एगली, बहुरि न देखै आई।।

❀ ❀ ❀

मथुरा जावै द्वारिका भावै जा जगनाथ।

साध संगति हरि भगति बिन कछु न आवै हाथ।।

❀ ❀ ❀

पंडित सेती कहि रह्या, भीतर मेधा नाहिं।

औरू को परमाधता गया मुहरका माहि।।

साखियो की प्रामाणिकता को प० हजारी प्रसाद जी द्विवेदी ने भी स्वीकार किया है। कबीर को समझने के लिए सबसे सरल और उत्तम साधन, साखी।

''साखी ऑखी ज्ञान की, समुझ देख मनमाहि।

बिन साखी ससार मे, झगरा छूटत नाहि।।

''आचार्य प रामचन्द्र जी शुक्ल साखियो को सम्प्रदायवाद को पोषक बताते है वे उनका साहित्यिक मूल्य सिद्धो और योगियो की रचानाओ की भाति साम्प्रदायिक शिक्षा मात्र ही मानते है। परन्तु ऐसी धारणा शुक्ल जी की किस आधार पर बनी यह समझ मे नही आता। प मुशी राम जी ने इसका खण्डन बडे ही मार्मिक शब्दो मे किया है।

''यह निश्चय है कि कवि किसी प्रेरणा से ही काव्य का सृजन करता है। साखियो मे परमात्मा की भक्ति या प्रेम ही मूलत· पाया जाता है, जिसके आधार पर सदाचारी और बुद्धिवादी समाज की स्थापना का प्रयत्न किया गया है। प्रेम के प्रसग को लेकर जिन पद्यो की रचना हुई है, उन्हे काव्य के अन्तर्गत मानना युक्ति सगत ही होगा।''

काव्य के तीन प्रमुख अंग– विचार, भाव और कल्पना मे से साखियो मे कल्पना तो अशमात्र है, परन्तु विचार और भाव की गगा यमुना के सगम की पवित्रता उसमे मिलती अवश्य है कबीर की साखिया नैतिकता के दृष्टिकोण से अत्यन्त उच्चस्तर की है यही कारण है कि हिन्दी का सत–साहित्य जिसमे कबीर की रचनाये प्रमुख हैं, विश्व मे बेजोड है।

वास्तव मे सम्प्रदायवाद के विरोध मे तथा हिन्दू और मुसलमानो को सत्य की राह बताने के प्रयत्न मे ही कबीर की वाणी कुछ उत्तेजित हो उठी थी, वे सम्प्रदायवादी नही थे। उनके असाम्प्रदायिक होने के प्रमाण उनकी साखिया ही है।

साखी दोहो के अनुरूप ही हैं। पिगल शास्त्र की कसौटी पर ये अवश्य खरी नही उतरेगी परन्तु जनकल्याण के लिए अपेक्षित जो सन्देश और अनुभूति साखियो मे सीधे सादे ढग से प्रस्फुटित हुई है वह अन्य साहित्य साधको मे, (केवल तुलसी, वृन्द और रहीम को छोडकर) नही दिखाई पड़ती है।

अष्टम

कबीर के पद

कबीर सत्सगी थे यह उनकी रचनाओ तथा आलोचको की विशद व्याख्याओ के आधार पर पहले ही स्वीकार किया जा चुका है। कबीरकालीन सत्संग मे जब सत्सग करने वालो की सख्या इकाई के अन्तर्गत ही रहती थी तब उपदेशक दोहा अथवा छोटे छोटे चुटकुलो मे तथ्यपूर्ण बाते बताने की चेष्टा करते थे। जब सख्या अधिक हो जाती थी तब वाद्य–यत्रो के साथ स्वर लय की मान्यता को स्वीकार कर साधक अपनी अनुभूति को पदो के रूप मे शिष्यो के सम्मुख व्यक्त करते थे। उपर्युक्त सन्त समागम की पद्धति आजकल सम्भव नही है। ध्वनि प्रचारक यन्त्रो के आविष्कारो तथा समय के अनुसार परिवर्तित मान्यताओ ने मानव की रुचि मे भी परिवर्तन ला दिया है। कबीर कालीन सन्त समागम ने मानव की रुचि मे भी परिवर्तन ला दिया है। कबीर–कालीन सन्त समागम मे ढफली के साथ जो शब्द जिस रूप मे निकल पडा वही उसका उपयुक्त रूप बन गया, परन्तु इसका यह अर्थ नही कि सन्त समागम की अन्य विधियॉ उस युग मे स्वीकृत नही थी। अथवा उनका प्रचलन नही था। स्वामी रामानन्द तथा उनके पूर्वकालीन अन्य सन्तो ने धार्मिक नेता के नाते घूम–घूम कर मौखिक रूप से अपने–अपने सिद्धान्तो का प्रतिपादन कर अनेक शिष्यो को उपदेश दिया था।

कबीर ने दस पाच के बीच जब जो मन मे आया अनुभूति से ओतप्रोत कर उसे प्रस्तुत किया। शिष्य–परम्परा ने इस साहित्य को एक पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ी को सौंपने का क्रम बनाये रक्खा और आज भी कबीर पन्थ के मानने वालो को कबीर के अनेक पद कण्ठस्थ हैं जिन्हे वे अपने शिष्यो के बीच ढफली पर बडी धुन और लगन के साथ गाते रहते हैं।

समाज स्वीकृत निम्न वर्ग मे इन पदो को जिस लय और लगन के साथ गाया जाता है वह अनुभव की वस्तु है। चमार जाति मे एक वर्ग ऐसा भी होता है जो मास मदिरा का प्रयोग नही करता है। वे 'भगत' के नाम से अपनी जाति के बीच पुकारे जाते हैं। सुना सुनी और लोग भी उनको 'भगत' कहकर ही सम्बोधित करते है। ये लोग दिन भर जूता सिलने के बाद शाम को ढफली लेकर अथवा बिना ढफली के कबीर के भजनो को गाते हैं आज के तीव्र गति से परिवर्तित

होने वाले ससार मे नियमो की जटिलता इन भक्तो के आचार–विचार के सबध मे भी नही कही जा सकती है कुछेक मदिरा अथवा ताडी आदि पीकर इन भजनो को अलमस्ती और फक्कडपने के साथ गाते हैं। आचार्य क्षितिमोहन सेन ने कबीर के पदो का सग्रह घूम–घूमकर इन्ही भक्तो और कबीर पथ के मानने वालो के मुख से सुनकर किया है।

कबीर के पदो की महत्ता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इन पदो ने महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे व्यक्ति को आकृष्ट किया था। उन्होने इन पदो का अग्रेजी मे अनुवाद कर पाश्चात्य समालोचको को कबीर को समझने के लिए आमत्रित किया था और इस नियत्रण को स्वीकार कर जिन पाश्चात्य आलोचको ने कबीर के अनुवादित पदो को सहृदयता के साथ पढा, वे भारतीय साधना और साहित्य के विषय मे अपनी पूर्व धारणाओ को बदलने के लिए बाध्य हुए। इनके पदो मे जिन विषयो की चर्चा की गई है उनका उल्लेख साखी प्रसग मे आ चुका हैं क्योंकि कलाकार अपनी अनुभूति को विभिन्न रूप रगो के आवरण तथा चित्रो मे सजाकर समाज के सम्मुख प्रस्तुत करने की चेष्टा करता है। कबीर का जों सिद्धान्त और मार्ग था उसी का प्रतिपादन उन्होने, चाहे वे साखी हो, पद हों अथवा रमैनी हो, सभी मे किया है।

परमात्मा कण–कण मे विद्यमान है। वह मदिर और मस्जिद की चहार दीवारियो मे, काबा और कैलास नामक स्थानो मे तथा यौगिक क्रियाओ के द्वारा नहीं प्राप्त किया जा सकता है जब तक जिज्ञासु होकर आर्त, अर्थात, भक्त परमात्मा से मिलने के लिए व्याकुल नहीं होता तब तक वह नही मिलने का।

मोकौं कहां ढूंढ़े बन्दे मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल न मैं मसजिद, न काबे कैलास में।
ना तो कौन क्रिया–कर्म में, नहीं योग वैराग में।
खोजी होय तो तुरतैं मिलिहौं, पल भर की तालाश में।
कहै कबीर सुनौ भाई साधो सब स्वासों की स्वांस में।

निर्मल मन होकर जो भी प्रभु से मिलने की ललक और उत्कण्ठा रखता है, प्रभु उसे अवश्य मिलते हैं पद की अन्तिम दो पंक्तियों में व्यक्त भाव–धारा को कबीर ने साखियों में भी व्यक्त किया है।

"जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ।"

कबीर जाति–पांति के विरोधी थे। उनमे समाज को स्वस्थ और स्वच्छ

देखने की अभिलाषा थी अतः इस भाव को उन्होने अपने अनेक पदो मे व्यक्त किया है। कुछेक मे सीधे, और कुछेक पदो मे आडे हाथो समाज के ठेकेदारो विशेषकर मुल्ला और पण्डितो, को फटकारा है।

"सन्तन जात न पूछौ निर्गुनियां"

"अरे इन दोउन राह न पाई"

से प्रारम्भ होने वाले पदो से सगीतात्मकता के साथ–साथ व्यग्यात्मक ढग से सीधी सी बात बडी चुभती हुई शैली मे कही गई है। भाषा प्रकाशन के अनुरूप ही बन पडी है निर्गुनिया के भाव मे उनके निर्गुण मत के प्रतिपादन की भावना भी समाविष्ट हैं इस प्रकार हम देखते हैं कि उनके पद समाज मे फैले हुए जाति–भेद रूपी झाड झंखाडो को उखाडने के लिए पैने औजार का काम करते हैं।

इनके पदो मे सांसारिक असारता का जिस रूप में वर्णन मिलता है वह अनुपमेय हैं माया और मोह से आसक्त इस शारीरिक सबध का अस्तित्व क्षणभगुर है। रूपको द्वारा काया के नष्ट होने की क्रिया का वर्णन सजीव है उदाहरणार्थ–

"मन फूला–फूला फिरै जगत में कैसा नाता रे।
माता कहै यह पुत्र हमारा बहिन कहै विर मेरा।
भाई कहै यह भुजा हमारी नारी कहै नर मेरा।।
पेट पकरि कै माता रोवै बांह पकरि कै भाई।
लपटि झपटि के तिरिया रोवे हंस अकेला जाई।।
जब लगि माता जीवै रोवे बहिन रोवे दस मासा।
तेरह दिन तक तिरिया रोवै फेर करै घर वासा।।
चारगजी चरगजी मंगाया चढ़ा काठ की घोड़ी।
चारों कोने आग लगाया फूंकि दियो जस होरी।।
हाड़ जरै जस लाह कड़ी को केस जरै जस घासा।
सोना ऐसी काया जरि गई कोई न आयो पासा।।
घर की तिरिया देखन लागी ढूढ़ी फिरी चहूं देसा।
कहै कबीर सुनो भाई साधो छाड़ों जग की आसा।।"

पद मार्मिकता और यथार्थ से परिपूर्ण हैं इसे पढ़ने के पश्चात् पाठक स्वतः अनुभव करने लगते हैं कि काया नश्वर है, ससार के नाते झूठे हैं और सभी स्वार्थ के बंधन हैं।

कबीर का निम्नलिखित पद उन्हे भाग्यवादी मानने के लिए उत्साहित करता है—

"करम गति टारे नाहिं टरी।
मुनि वशिष्ठ से पण्डित ज्ञानी सोधि के लगन धरी।
सीता हरन मरन दसरथ का बन में विपति परी।
कहँ वह फन्द कहा व पारधि कह वह मिरग चरी।
सीता को हरि लेगौ, रावन सुबरन लंक जरी।
नीच हाथ हरिचन्द्र बिकाने बलि पाताल धरी।
कोटि गाय नित पुण्य करत नृप गिरगिट जोनि परी।
पाण्डव जिनके आपु सारथी तिन पर विपति परी।
दुरजोधन को गरब घटायो जदुकुल नास करी।
राहु केतु जौ भानु चन्द्रमा विधि संयोग परी।
कहत कबीर सुनौ भई साधो होनी होके रही।"

परन्तु इस सबध मे कुछ अधिक न कह कर यही कहना पर्याप्त समझता हू कि वे भारतीय सन्तो से प्रभावित थे पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मानते थे। पाप पुण्य की व्याख्या को स्वीकार करते थे और मानते थे कि सत्कर्मो से मन का मैल दूर होता है अधकार को दूर कर प्रकाश मे लाने वाले गुरु की श्रद्धा करते थे और उसे तो प्रभु से साक्षात्कार कराने के कारण अधिक भी महत्व प्रदान किया है इस भाव को भी उन्होने व्यक्त किया है—

"गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागू पाव।
बलिहारी उन गुरू की जिन गोविन्द दिया बताय।।"

इस प्रकार यदि वे भाग्य पर विश्वास करते है तो कोई आश्चर्य नहीं। उनके पदो मे साधारणतः अज्ञात रहस्यों का उद्घाटन भी मिलता है।

यथा :—

"पायो सत नाम गरे के हरवा।
सांकर खटोलना रहनि हमारी दुबरे दुबरे पाचक हरवा।
ताला कुंजी हमें गुरु दीन्ही जब चाहो तब खोलो किवरवा।।
प्रेम प्रीति चुनरि हमारी जब चाहौ तब नाचौ सहरवा।
कहै कबीर सुनो भाई साधो बहुर न ऐवै एही नगरवा।।"

उनकी विरहिणी आत्मा जिसे सभोग का सौभाग्य प्राप्त हो चुका था कितनी सरलता और मन को हलकोरे देने वाले शब्दो मे निवेदन करती है कि–

"कैसे दिन कटिहै, जतन बताये जइयो।
एहि पार गगा वाहि पार जमुना
विचवा मडइया हमको छवायै जइयो।।
अंचरा फारि कागद बनाइन
अपनी सुरतिया हियरे लिखाये जाइयो।
कहत कबीर सुनौ भाई साधो
बहिया पकरि के रहिया बताये जइयो।।"

कबीर के पदो मे भाषा की लपेट के साथ जो भाव गुम्फित हुए हैं वे सीधे मन पर प्रभाव डालने मे समर्थ हैं। उनमे पाठको को आकर्षित करने की शक्ति और अद्‌भुत क्षमता है।

साखियो से कबीर के सिद्धान्त पदो की अपेक्षा अधिक आसानी से समझे जा सकते है। परन्तु इतना तो निर्विवाद सत्य है कि कबीर को जन सम्पर्क मे लाने और प्रतिष्ठा तथा ख्याति अर्जन कराने मे जितना महत्व पदो का है उतना उनकी साखी का नही है। उनके पदो को प्रातः काल उठने वाले गगा प्रेमी, सगीत साधक, भक्त और जाने अनजाने न जाने कितने लोग गाया करते हैं। कबीर की कीर्तिश्री को विकसित करने मे पदो का बडा महत्वपूर्ण योगदान है।

नवम

कबीर की परम्परा को अपनाने वाले अन्य कवि

साधारणतया कबीर ने जो परम्परा अपने युग मे स्थापित की उसके दो विभाजन स्वीकार किये जा सकते हैं।

(१) साहित्यिक

(अ) विषय की दृष्टि से

(ब) छन्द योजना की दृष्टि से

(२) सैद्धान्तिक।

कबीर के पश्चात् कुछ समय तक उनकी परम्परा को पूर्णतः प्रधानता देते हुए सन्तो ने अपने उद्‌गार व्यक्त किये। वे कबीर से साहित्यिक और सैद्धान्तिक दोनो ही रूपो से प्रभावित थे। इन लोगों में धर्मदास, सुखनिधान दास, सुन्दरदास, नानक, सहजोबाई, दयाबाई और इन्द्रावती का नाम मुख्य रूप से लिया जाता है। धर्मदास जी जाति के कसौंधन बनिये थे। बॉधवगढ मे धन सम्पन्न होने के कारण आर्थिक चिन्ता से मुक्त रहते थे। स्वभाव से धर्मात्मा और अतिथि प्रेमी थे। अतः साधु समागम ने उनकी धार्मिक भावना को पुष्ट कर दिया था। यात्रा करते समय कबीर के सम्पर्क मे आकर इन्होने मूर्ति पूजा और तीर्थव्रत आदि से चित्त हटाकर आन्तरिक जिज्ञासु के रूप मे सत मत का प्रतिपादन किया। "अमर सुखनिधान" नामक ग्रथ मे इनकी और कबीर साहब की बातचीत विस्तृत रुप मे लिखी है। कबीर के उपरान्त कबीर की गद्‌दी इन्ही को प्राप्त हुई थी। इन्होने कबीर की ही भाति पदो मे अपनी भावभिव्यक्ति की है।

मोरा पिया बसै कौन देश हो।

अपने पिया के ढूंढ़न हम निकसी कोई न कहत सनेस हो।।

पिय कारन हम भई हैं बावरी धरयो जोगिनिया कै भेस हो।

ब्रह्मा विष्णु महेस न जानै का जानै सारद सेस हो।।

धनि जो अगम अगोचर पइलन हम सब सहत कलेश हो।

उहा के हाल कबीर गुरू जानैं आवत जात हमेस हो।।

इनकी गद्दी छत्तीसगढ मे विद्यमान है। कबीर के उपरान्त धर्मदास और धर्मदास के बाद सुखनिधान का उल्लेख मिलता है। इनका साहित्य गहराई मे यद्यपि कबीर की भाव भूमि तक नही पहुचता है तथापि आध्यात्मिक बिरह इनमे कम उत्कृष्ट नही है। धर्मदास की भाति प्रारम्भ मे ये भी साकार उपासक थे। इनकी रचनाओं मे पूर्वी भाषा के शब्द अधिक मिलते हैं। सूतल, रहल (रहना) करल (करना) आदि शब्दो का प्रयोग इनके द्वारा किया गया है।

इसके उपरान्त गुरु नानक का नाम आता है। इनका जन्म स. १५२६ वि. कार्तिक पूर्णिमा के दिन कल्यानदास खत्री की पत्नी तृप्ता के गर्भ से हुआ था। समय की परिस्थिति से प्रभावित हो उन्होने सिख समुदाय नाम से सगठन कर हिन्दुओ का बडा भारी उपकार किया। कुछ लोग इन्हे राजा जनक का अवतार मानते हैं। कबीर की ही भाति इन्होंने भी निम्नलिखित सिद्धान्तो का प्रतिपादन कर उनके प्रचार के लिए प्रयास किया था।

(१) हिन्दू–मुस्लिम एकता।

(२) एकेश्वरवाद।

(३) मूर्ति पूजा का विरोध।

परन्तु ये कबीर की भाति निर्गुण मार्ग के पोषक नहीं थे। इन्होने कबीर की ही भाति साखी और पदो मे अपनी भावना को व्यक्त किया है।

"काहे रे बन खोजन जाई।

सर्व निवासी सदा अल्पेया तोही संग समाई।

पुण्य मध्य ज्यों वास बसत है मुकुर मांहि जसछाई।

तैसेही हरि बसै निरन्तर घट ही खोजो भाई।

जन नानक बिन आया चीन्हे मिटे न भ्रम की काई।"

इनके बाद क्रम से सर्वश्री, अंगददेव, अमरदास, रामदास, अर्जुनदेव, हरिगोविन्द, हरिराई जी, हरिकृष्ण जी, गुरु तेग बहादुर और गुरु गोविन्द सिंह आदि इनकी गद्दी पर बैठे। उपर्युक्त सभी सिख सम्प्रदाय के धर्मगुरुओं ने रचनाये की हैं परन्तु गुरु नानक और गुरु गोविन्ददास जी की रचनाओ का अन्य की अपेक्षा साहित्यिक महत्व अधिक है उदाहरणार्थ गुरु गोविन्द सिह जी का एक पद उद्धृत

किया जा रहा है।

"कह्या भयौ दोउ लोचन मूंद कै बैठि रह्यो बक ध्यान लगायो।
न्हात फिरयो लियौ सात समुद्रन, लोक गयो, परलोक गवायो।।
वासु कियौ विखिजान सो बैठ कै, ऐस ही ऐस सुवैस बितायो।
साचु कहौ, सुन लेहु सभै, जिन प्रभु कियो तिन ही प्रभु पायो।।"

इसके बाद गुरु नानक की ही भाति कबीर से प्रभावित सतो मे ख्याति प्राप्त सत दादू का नाम श्रद्धा से लिया जाता है।

इनका जन्म सवत् १६०१ वि. की चैत शुक्ला अष्टमी गुरुवार को अहमदाबाद मे हुआ था। इनकी जाति के सबध मे विद्वान एकमत नही हैं। प. सुधाकर द्विवेदी इन्हे मोची मानने के साथ–साथ कमाल का शिष्य भी मानते है। भ्रमाण करने के कारण इन्हे अनेक प्रान्तीय भाषाओ का अच्छा ज्ञान हो गया था। सिन्धी, मारवाडी, गुजराती, मराठी और तत्कालीन राजभाषा फारसी के जानकार थे। उनकी रचनाओ मे बागड बोली (राजस्थान) के शब्द अधिक मिलते है। इनकी मृत्यु सवत् १६६० मे दराना नामक स्थान मे हुई थी।

रज्जब की निम्नलिखित साखी से ज्ञात होता है कि इनका साक्षात्कार अकबर से हुआ था।

"अकबर साहि बुलाइया, गुरु दादू को आप।
सांचि झूठ व्योरो हुओ, तब रह्यो नाम परताप।।"

इन्होने १२ वर्ष तक कठिन तपस्या करके योग की सिद्धि प्राप्त की थी। इससे ये चमत्कारिक कार्य करने की भी क्षमता रखते थे। परन्तु करामात करना ये पाप समझते थे। बाह्याडम्बर को त्याग कर अन्तर्मुख रहकर अर्न्तज्योति के ध्यान, अभ्यास, स्मरण एव सहज योग से ईश्वर मे लय रहना ही सर्वोपरि साधना मानते थे। इन्होने अपने मत को कोई सम्प्रदाय रूप का नही दिया था। परन्तु इनके शिष्यो ने प्रारम्भ मे ब्रह्म सम्प्रदाय तथा बाद मे दादू पथ का नामकरण कर एक सम्प्रदाय खड़ा कर दिया है।

इनके सहस्रो शिष्यो मे से १५२ शिष्यो की गणना मुख्यतः स्वीकृत हुई है। परन्तु इनमें रज्जब और सुन्दरदास जी को जो सम्मान और ख्याति प्राप्त है वह अन्य लोगो द्वारा अर्जित नही की जा सकी थी।

सुन्दरदास जी की रचनाओ का साहित्यिक महत्व है। इन्होने छोटे, बडे

मिलाकर ४८ ग्रथ लिखे है जिसका प्रकाशन राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता, ने सुन्दर ग्रथावली के नाम से प्रकाशित किया है। पुरोहित श्री हरिनारायण जी बी ए ने १५०० पृष्ठो के इस ग्रथ का सम्पादन कर वस्तुत प्रशसनीय कार्य किया है। इसके बाद सहजोबाई, दयाबाई और इन्द्रावती का नाम आता है। इनके पदो मे क्रमश रागात्मक भावना, नीति विश्लेषण तथा एकता का आभास मिलता है।

विशेषकर कबीर पथी अगरखी पहनते है। गुरु को सर्वोपरि मानते है। सभी मे निराकार की उपासना चलती है। उपासना और पूजा किसी भी जाति का कोई भी व्यक्ति कर सकता है उपर्युक्त सतो का साहित्य हिन्दी ही मे मिलता है। कबीर पथी, सिख दादू आदि सभी सम्प्रदायो मे कर्म और जन्मान्तरवाद को स्वीकार किया गया है। भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तो मे लगभग १० पथ पाये जाते है जिनमे प्रमुख–पजाब मे नानक–राजपूताने मे दादू–अलवर मे लालदासी–नागौर मे अघोरपथी सम्प्रदाय प्रमुख है। इन सब सत कवियो के विषय मे आचार्य शुक्लजी का मत, जो अप्रासागिक नही है, उद्धृत कर रहा हू–

"निर्गुण मानने वाले सत कवियो मे ऐसे थोडे ही हुए है जिनकी रचना सत कवियो मे आ सकती है। उनमे मानव–जीवन की वह मिश्रित योजना नही है जो जन जीवन को आकर्षित कर सके। इस प्रकार यह परम्परा तो चलती रही पर साहित्य पर कोई सामान्य प्रभाव नही पडा। निर्गुण पथियो के सबध मे यह समझ लेना चाहिये कि उनके सबध मे दार्शनिक विचारधारा देखना भ्रम है।

किसी मे वेदान्त के ज्ञान तत्व का अवयव अधिक मिलेगा किसी मे योगियो के साधन तत्व का, किसी मे सूफियो के प्रेम का। निर्गुण पथ मे जो योग–बहुल ज्ञान पथ है वह वेदान्त से लिया गया है। प्रेमतत्व सूफियो का है न कि वैष्णवो का। अहिसा और प्रियत्व के अतिरिक्त कवियो के सुरति और निरति शब्द बौद्ध सतो के हैं।"

शुक्लजी की इस सम्मति के विरुद्ध आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इन सत कवियो मे दार्शनिक पुष्टता का अभाव मानते है इनका कहना है कि सत कवियो की व्यजनात्मक शैली है आचार्य मुशीराम जी ने भी शुक्लजी के मत का खण्डन कबीर बचनामृत नामक ग्रथ की भूमिका मे किया है।

सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से कबीर का निर्गुण मार्ग सत तुलसीदास के आविर्भाव के साथ ही क्षीण हो जाता है सूर और तुलसी की सगुणोपासना ने साहित्यको तथा सतो दोनो पर ऐसी धाक जमाई कि अन्य सभी मत, सम्प्रदाय और मार्ग धूमिल होकर अशक्त से प्रतीत होने लगे। यद्यपि कबीर की रमैनी से जिसमे

दोहो ओर चौपाइयो का समावेश किया गया है तथा साखी और भजन से सभी कवि उत्तरोत्तर प्रभावित थे। जायसी ने पद्मावत की रचना दोहे और चौपाइयो मे ही की थी। तुलसीदासजी की दोहावली, विनय पत्रिका और रामायण मे हम कबीर की साखी, पद और रमैनी की ही छन्द–योजना का सुथरा और सॅवारा हुआ रूप पाते हैं। फिर तो यह पथ जिसे तुलसी ने प्रशस्त किया सभी साहित्यिक साधको के लिये राजमार्ग बन गया।

●

जायसी

प्रथम

प्रेमगाथा की परम्परा

इतिहास के अध्येता तथा साधारण बुद्धिजीवी सभी यह स्वीकार करते है कि जब विजेता विजित जाति के साथ रह कर जीवन यापन करने लगता है, उस समय सस्कार, भाव, विचार तथा रीति–रिवाज आदि के विनिमय जिस गति से होता है, उसको उस काल के पुरुष उसी समय समझने मे असमर्थ रहते है। सघर्ष की स्थिति पार हो जाने पर जब व्यवस्था स्थापित हो जाती है उस समय परिवेक्षक निरीक्षणोपरान्त कुछ कहने मे समर्थ होता है। सन् १६४७ मे भारत के बटवारे के बाद धार्मिक 'समता' होने पर भी जो हिन्दू पाकिस्तानी क्षेत्र से मध्य उत्तर प्रदेश मे आकर बसे उन्होने, चाहे वे 'सिन्धी हो अथवा पजाबी या बगाली', उत्तर प्रदेश के छोटे से छोटे महत्वहीन त्योहारो को अपनाकर पजाबी', उत्तर प्रदेश के छोटे–से छोटे महत्वहीन त्योहारो को अपनाकर साथ ही साथ अपनी वेश–भूषा तथा खानपान से उत्तर प्रदेश मे बसने वाले नागरिको को प्रभावित किया है। ठीक ऐसी ही कुछ परिस्थिति उस समय भी होगी जिस समय मुसलिम जाति विजेता रूप मे हिन्दुओ के साथ भारतवर्ष मे रहने की चेष्टा कर रही थी। उनका अपना अस्तित्व बने रहने पर भी उनके भावो और विचारो मे सामंजस्य स्थापित हो रहा था। धार्मिक कट्टरता का भूत कुछ–कुछ उतर रहा था। मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति के वशीभूत हो दोनो ही शान्ति की इच्छा से एक दूसरे के सम्पर्क मे आ रहे थे। कबीर की वाणी ने धार्मिक कट्टरता को दूर कर मानव मानव से प्रेम करने का जो उपदेश दिया था, वह जनता की क्रियाशीलता मे प्रतिध्वनित होने लगा था। धार्मिक विवाद व्यर्थ है, ईश्वर एक है, कुछेक को छोडकर सभी स्वीकार करने लगे थे। ऐसे ही समय में कतिपय सन्त भावुक मुसलमान कवियो का समुदाय अभ्युदित हुआ, जिसने हिन्दुओं के घरों की प्रेम कहानियो को हिन्दी भाषा मे छन्दबद्ध कर समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया। इन कहानियो के वर्णन मे कवियो ने तत्कालीन धार्मिक कट्टरता को दूर ही रखा है। वे उदार रहे हैं। वर्णन शैली मे दूसरे धर्म के प्रति कही भी खीझ दृष्टिगत नही होती है। कथावस्तु मे कवि–धर्म अपेक्षित कल्पना से अवश्य काम लिया गया है और उससे वर्णन मे सजीवता ही आई है।

प्रेम चिरन्तन है, शास्वत है। वह जीवन के स्थायी भावो मे एक प्रमुख

स्थान रखता है। अत इसका जनजीवन मे समावेश भी आदि काल से ही चला आ रहा है परन्तु प्रस्तुत शीर्षक, प्रेमगाथा की परम्परा मे प्रेम से तात्पर्य दाम्पत्य प्रेम के आस–पास की पृष्ठभूमि से ही है जायसी के पूर्व सस्कृत साहित्य मे प्रेम कथाओ की अनेक चर्चाये मिलती हैं शकुन्तला दुष्यन्त, अर्जुन–उर्वशी आदि की प्रेम गाथाये सस्कृत साहित्य मे जिस अनुपमेय ढग से वर्णित हुई है वह साहित्य के गौरव की वस्तु है। परन्तु राजाओ तथा समाज के उच्चवर्गीय सदस्यो के आन्तरिक जीवन से ही लोकप्रवृत्ति का परिचय नही मिलता है हिन्दी मे प्रेमगाथाओ की चर्चा करने वालो मे प्रमुख नाम जायसी का लिया जाता है। जायसी के समसामयिक कवियो ने प्रेम सबधी अनेक आख्यानो का सृजन किया है। इन लौकिक आख्यानो मे ईश्वरोन्मुख प्रेम की अभिव्यजना के दर्शन होते है। कबीर के उपदेश जिनमे वेद, पुराण का खण्डन एव निराकार उपासना पर जोर दिया गया था, जनता के अभ्यन्तर को छूने असमर्थ से हो रहे थे। अत· बिना किसी कल्पित मूर्ति के आध्यात्मिक चिन्तन, चाहे व ईश्वर के प्रति ही क्यो न हो पल्लवित नही हो सकता है। प्रेम की पीर को पहिचानने वाले इस युग के कवियो ने, जिनका अध्ययन पूर्ववर्ती कवियो की अपेक्षा अधिक था, इस दृष्टिकोण को सम्मुख रखकर ही कविता की है। प्रसिद्ध राजाओ, जिनमे सुद्रक तथा विक्रमादित्य आदि हैं, के आन्तरिक प्रेम व्यापारो का जो चित्रण हुआ है उसमे नाम की सत्यता के अतिरिक्त प्रेम व्यापारो का जो चित्रण हुआ है कल्पना मात्र ही है। जायसी ने स्वय अपने पूर्वापर वर्णित प्रेम गाथाओ की तालिका प्रस्तुत की है।

> "विक्रम धँसा प्रेम के बारा। सपनावति कहँ गएउ पतारा।।
> मधू पाछ मुगुधावति लागी। गगनपूर होइगा वैरागी।।
> राज कुंवर कचर पुर गएऊ। मिरगावति कहँ जोगी भयऊ।।
> साधु कुंवर खंडावत जोगू।। मधुमालति कर कीन्ह वियोगू।।
> प्रेमावति कह सुरसरि साधा। ऊषा लागि अनिरुद्ध वर बाधा।।

उपर्युक्त चौपाइयो मे वर्णित कथाओ में से विक्रमादित्य और सपनावति तथा ऊषा–अनिरुद्ध की कथाओ को छोड देने से चार कथाये ऐसी हैं जिन्हे जायसी के पूर्व लिखा गया है और जिनका कथानक सर्व साधारण तक आज भी नही पहुँच पाया है। मृगावती और मधुमालती क्रमश कुतबन ओर मझन द्वारा लिखी गई हैं और इन पर समालोचको ने अपने–अपने विचार भी व्यक्त किये हैं परन्तु मुग्धावती ओर प्रेमावती नामक ग्रन्थ आज तक उपलब्ध नही हो सके है। मृगावती के रचयिता कुतवन का समय विक्रम की सोलहवी शताब्दी के पास का निश्चित हुआ है। ये

शेरशाह के पिता हुसेन शाह के आश्रित होकर रहते थे। चिस्ती वश के प्रसिद्ध धर्म गुरु शेख बुरहान इनके गुरु थे। मृगावती मे चन्दर नगर के राजा गणपति देव के पुत्र और कचन नगर के रूप मुरार की पुत्री मृगावती के प्रेम–व्यापार का वर्णन किया गया है। मृगावती का दर्शन करने के पश्चात चन्दर नगर का राजकुमार उस पर आसक्त हो उसे जीवन सहचरी के रूप मे देखना चाहता है परन्तु राजकुमारी उडने की कला को जानने के कारण उसे वियोग व्यथित अवस्था मे छोड चली जाती है राजकुमार अनेक कष्टो को सहन करता हुआ अन्त मे रुक्मिणी नामक स्त्री राक्षस से त्राण दिलाकर पत्नी के रूप मे स्वीकार कर लेता है। अन्तोगत्वा मृगावती से राजकुमार का पुनर्मिलन होता है। राजकुमार मृगावती को पत्नी रूप मे स्वीकार कर जीवन यापन करने लगता है। भाग्यचक्र से शिकार के समय हाथी पर से गिरजाने के कारण राजकुमार की मृत्यु हो जाती है और दोनो ही रानिया राजकुमार के साथ सती हो जाती है। राजकुमार की वियोगावस्था का सहारा लेकर कवि ने साधक की कठिनाइयो का चित्रण किया है।

मधुमालती सूफी कवि मझन की प्रसिद्ध कृति है। फारसी मे इसकी प्रति की चर्चा पं. रामचन्द्र जी शुक्ल ने की है परन्तु पूर्णरूप मे इस ग्रन्थ की प्राप्ति अभी तक नही हो सकी है जो कुछ अश प्राप्त है उसके आधार पर यही कहा जा सकता है कि यह भाषा और कथा की व्यापकता की दृष्टि से मृगावती की अपेक्षा अधिक रोचक है।

जायसी द्वारा लिखित चौपाइयो मे जिन ग्रन्थो, नायको अथवा नायिकाओ के नाम आये है, उनसे यह प्रतिभाषित होता है कि नायिका के प्रति उनका अधिक झुकाव रहा है और दूसरी बात जो दृष्टिगत होती है वह यह कि उस समय 'वती', प्रत्यय युक्त नामो का बोल बाला था। जैसे मधुमालती, मृगावती प्रेमावती, मुग्धावती आदि। पृथ्वीराज रासो मे भी पृथ्वीराज की हसावती, इन्दावती आदि रानियो की कथाये हैं।

वीरगाथा अथवा चारणकाल मे भी मूलत. प्रेमकथानक की ही प्रमुखता हुई है प्रेम कथानको की सभी विशेषताये इस काल की रचनाओं मे पाई जाती है अन्तर केवल इतना ही है कि इन कहानियो मे नायक की आत्मिक वृत्ति के आधार पर उसकी युद्धपटुता और शौर्य प्रवृत्ति को महत्ता प्रदान की गई जिससे प्रेम–व्यापार गौण पड गया है। इसी गौणता के कारण सूफी कथानको के प्रेम प्रसगो के साथ इनकी गणना न करने पर भी इतना तो स्पष्ट है कि पद्मावती की वही लोक प्रचलित कथा रासों मे भी ग्रहण की गई है जो कि जायसी के पद्मावत का आधार है।

आध्यात्मिक ओर धार्मिक सिद्धान्तो के प्रचारार्थ रचित अन्य सत कवियो के प्रेम–काव्य मे १६वी सदी के सत वरणीदास का 'प्रेम प्रकाश' और १७वी सदी के सत दु खहरण का 'उपहावती' उल्लेखनीय है। अष्ठछाप के कवि नन्ददास ने 'रूपमजरी' नामक कल्पित प्रेम–काव्य लिखा था। इसमे स्पष्टतया हरि भक्ति प्रचार की भावना ही दृष्टिगत होती है उनमे नल–दमयन्ती, कृष्ण–रुक्मिणी, ऊषा–अनिरुद्ध की कथाये विशेष प्रचिलित है तीसरे प्रकार की रचनाओ के अन्तर्गत अर्ध ऐतिहासिक और लौकिक प्रेम–काव्यो की रचना को दृष्टि मे रखकर, विशेषता राजस्थान और गुजरात मे प्रचिलत, कतिपय प्रेम कथाओ का उल्लेख किया जाता है ढोलामारू के जो दोहे इस समय मिलते है उनकी भाषा बहुत पुरानी नही है परन्तु उनमे क्रमबद्ध कहानी का आभास अवश्य मिलता है। १७वी सदी मे किसी अज्ञात कवि द्वारा रचि "सारगा सदै वृक्षैरादुआ" प्राप्त होता है राजा शालिवाहन के पुत्र सदावृक्ष और उनकी पुख सावलगा की प्रेम कथायं, जो राजपूताने मे लोकप्रिय रही हैं, मिलती है। इसी प्रकार १७वी सदी के उत्तरार्ध मे बीजो नामक नायक और सोरठ नामक नायिका की प्रेम कथा १३१ दोहो मे "सोरठारादुहा" नाम से प्राप्त होती है। इसके उपरान्त ख्यातिप्राप्त दास कवि लिखित ११२ दोहो की पुस्तक "मदन सतक" मिलती है। इसमे किसी मदन कुमार और चम्पक माला के पारस्परिक स्वच्छन्द प्रेम की चर्चा है। जैन कवि मुल्लल लाभ ने सवत् १६१६ मे दोहा चौपाई और माहाचन्द्र ने 'माधवानल कामकन्दला चरित्र' लिखा था। इनके अतिरिक्त आलम कवि का "माध ावानल भाषा निबध" और गणपति रचित "माधवानल दोहाबद्ध" की भी चर्चा विद्वानो द्वारा की गई है।

प्रेमाख्यानो मे जायसी द्वारा रचित पद्मावत का जो स्थान है उसे उसकी सर्वप्रियता गुहार गुहार कर जता रही है। इसके कथानक की चर्चा अगली पक्तियो मे करने का प्रयास किया जायेगा। यहॉ तो इतना ही अभीष्ट है कि अन्य जितनी भी रचनाये भाषा और भावना से साम्य रखती हुई प्रकाश मे आई है उनमे पद्मावत का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। जायसी के बाद प्रेमगाथा की यह परम्परा कुछ दिनो तक चलती रही। जहागीर के समय इस परम्परा मे गाजीपुर निवासी उस्मान (मान) का नाम अधिक श्रद्धा से लिया जाता है। इनके पिता का नाम शेख हुसेन था। ये निजामुद्दीन चिस्ती की शिष्य परम्परा मे गाजी बाबा के शिष्य थे। इन्होने सवत् १६७० के लगभग चित्रावलि नामक काव्य की रचना की। इसमे नैपाल के राजा धरनीधर के पुत्र सुजान और रूप नगर के राजा चित्रसेन की कन्या चित्रावलि की प्रेम कहानी है इनके बाद जायसी द्वारा विकसित की हुई पद्धति पर रचना करने वालो मे नूर मुहम्मद कासिमशाह का भी नाम लिया जाता है। कासिमशाह का समय

सवत् १६८२ के आसपास का निर्णीत हुआ है इन्होने हस जवहि नाम की कहानी को पदबद्ध किया है।

नूर मुहम्मद जौनपुर के रहने वाले थे। प हजारी प्रसाद जी इन्हे बादशाह मुहम्मदशाह का समकालीन मानते है। परन्तु प्रो सुधाकर जी पाण्डेय का मत इससे भिन्न है वे इन्हे कासिमशाह का ही समकालीन मानते है। इन्होने इन्द्रावती नामक प्रेमाध्यानक काव्य की रचना की है प रामचन्द्र जी शुक्ल इसका समय सवत् १७९६ तथा बाबू श्यामसुन्दर दास एव प्रो सुधाकर जी इसका समय सवत् १८०१ निर्धारित करते है। इसका प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा (काशी) द्वारा किया गया है इसके अतिरिक्त नूर मुहम्मद साहब की हिन्दी की एक और रचना 'अनुराग बासुरी' के नाम से प्राप्त हुई है।

इन मुसलमान कवियो की देखा देखी हिन्दू कवियो ने भी प्रेमाख्यानक काव्यो की रचना की परन्तु उनमे वह बात नही आ पायी जो सूफी कवियों की कविताओ मे आयी हुई है। ऐसे काव्यो मे लक्ष्मण सेन पद्मावती कथा, रसरतन कनकमजरी, कामरूप की कथा, चन्द्रकला, प्रेम पयोनिधि तथा हरिचन्द्र आदि है।

उपर्युक्त सूफी कवियो द्वारा रचित प्रेमगाथाओ की विशेषताओ को समालोचको तथा साहित्य के अध्येताओ ने मुख्यत तीन विचार–सरणियो मे विभाजित किया है।

१. इन प्रेमगाथाओ की रचना भारतीय चरित्र काव्यो की सर्गबद्ध शैली मे न होकर फारसी की मसनवी शैली पर हुई है कथा सर्गों अथवा अध्यायो मे विभाजित न होकर घटनाओ से सबधित माध्यम द्वारा की गई है प्रारम्भ मे ईश्वर तथा राजा की वन्दना करके ही क्रम का प्रारम्भ किया गया है।

२. इन प्रेमाख्यानक काव्यो की भाषा अवधी है। जिसमे पूर्वी बोली के शब्दो का भी समावेश हुआ है कबीर की रमैनी की ही भाँति दोहा चौपाइयो का क्रम लेकर ही ये कहानियॉ आगे बढी है।

३. हिन्दुओ के घरो की सरस प्रेम कहानियो को जिस सह्रदयता के साथ इन मुसलिम कवियो ने वर्णन किया है वह वस्तुतः प्रशसनीय है।

द्वितीय

जीवन–वृत्त

जब किसी कलाकार के जन्म, समय, माता पिता, और सगे सम्बधियो के सबध मे निश्चित रूप से कुछ भी नही ज्ञात हो पाता है, उस समय आलोचक कालाकार की कृतियो मे अवलोकन कर अपनी जिज्ञासा को शान्त करने की चेष्टा करता है ठीक यही स्थिति जायसी के जीवन–वृत्त के सम्बन्ध मे भी हुई है, जिसका समाधान उनके 'पद्मावत' तथा आखिरी कलाम' द्वारा करने का प्रयास किया गया है। 'आखिरी कलाम' नामक पुस्तक सन् १५२८ ई के लगभग बाबर के समय मे लिखी गई। इसमे बाबर बादशाह की प्रशसा सबधी उक्तियॉ मिलती हैं। इसी पुस्तक मे जायसी ने अपने जन्म–समय के सबध मे सकेत किया है।

"भा अवतार मोर नौ सदी। तीस बरस ऊपर कवि बदी।।"

पद्मावत जो इनकी सर्वश्रेष्ठ तथा लोकप्रिय रचना है के निर्माण काल के संबध मे भी कवि ने निम्नलिखित चौपाई कही है।

"सन् नव सौ सत्ताइस अहा। कथा आरम्भ बैन कवि कहा।।"

आखिरी कलाम से उद्धृत चौपाई से ऐसा प्रतीत आरम्भ होता है कि उनका जन्म सवत् ६०० हिजरी (सन् १४४२ के लगभग हुआ था। और तीस साल के बाद के कवि के रूप मे ख्याति अर्जित कर चुके थे। जिसकी पुष्टि 'सन् ६२७ अहा' से होती है क्यो कि पद्मावत ही कवि की सर्वश्रेष्ठ कृति है।

उपर्युक्त दोनो पक्तियो का विश्लेषण एव सामजस्य करने के पश्चात तथा अन्य किसी समीचीन मत के अभाव मे जायसी का जन्म काल सन् १४६२ ई. ही उपयुक्त जान पडता है जायसी का पूरा नाम मलिक मुहम्मद जायसी था। मलिक इनकी उपाधि थी। और जायस नामक स्थान मे रहने के कारण लोग इनको जायसी कहते थे। मूलरूप मे इनका नाम मुहम्मद ही था। रायबरेली जिले के अतर्गत जायस एक बडा कस्बा और रेल का स्टेशन है। इनके जन्म काल की ही भाति इनके जन्म स्थान का सबध मे भी कोई निश्चित मत अभी तक प्रकाश मे नही आया है।

"जायस नगर धरम असथानू। तहॉ आइ कवि कीन्ह बखानू।।"

सबध मे भी दो मत हैं। प सुधाकर द्विवेदी और डाक्टर गियर्सन के

साथ–साथ प० राम नरेश त्रिपाठी का यह विचार है कि जायसी का जन्म कही और हुआ था और वे जायस मे आकर बस गये थे। प रामचन्द्र शुक्ल जी का मत इसके बिलकुल विपरीत है। उनका कहना है कि पद्मावत को लेकर जायसी ने थोडे से पद रचे उसके पीछे वे जायस को छोडकर कुछ दिनो तक इधर–उधर रहे। अत मे जब फिर वे जायस मे आकर रहने लगे तब उन्होने इस ग्रन्थ को उठाया और पूरा किया। इसी बात का सकेत 'कवि कीन्ह बखानू' मे मिलता है।। 'तहा आई' से जायस उनका जन्म स्थान ही है इसका स्पष्टीकरण नही हो पाता है जायस वालो का कहना है कि जायसी का घर कन्वाने मुहल्ले मे था। पद्मावत मे कवि ने अपने कुछ एक मित्रो के नामो की चर्चा की है और वे सब जायस के ही रहने वाले थे।

"चारि मीत कवि मुहम्मद पाए। खोरि मिताई सिर पहुचाए।।
युसुफ मलिक पडित बहु ज्ञानी। पहिले भेद बात वै जानी।।
पुनि सलार कादिम मतिमाहां। खाडे दान उभैनिति बाहां।।
मिया सलोने सिन्ध बरियारू। बीर खेतरन खड़ग जुझारू।।
सेख बडे बड सिद्ध बखाना। किये आदेष सिद्ध बड माना।।

जायसी का वश एक ही पीढी के बाद समाप्त हो गया था। उनके भाई के वशजो मे से एक के पास जो वश वृक्ष है उससे यह स्पष्ट नही हो पाता कि उनके पूर्वज जायस के ही रहने वाले थे।

उपर्युक्त मतो की विवेचना के फलस्वरूप इतना तो निश्चित ही है कि जायसी के जीवन का अधिकाश समय जायस मे ही बीता था।

"मुहम्मद बाई दिसि तजा, एक सरवन, एक आख" और "एक नयन कवि मुहम्मद गुनी" के आधार पर निर्विवाद रूप से यह स्वीकार किया जा चुका है कि जायसी कुरूप थे। बायी आख और और बायें कान की प्रतिभा से वचित थे। परन्तु यह दैव–कोप उन्हे जन्म से ही प्राप्त हुआ था अथवा किसी महामारी ने उनके जीवन के मध्य मे अपना अमिट प्रभाव उनके शरीर पर छोड़ दिया था इस सबध मे समीक्षक एक मत नही हो सके हैं जायसी की अपनी कुरूपता के लिए कभी भी सताप नही था। अन्यथा वह कवि हृदय पाकर अवश्य किसी न किसी पक्ति मे प्रकट हो पडता जैसा कि अग्रेजी साहित्य के प्रसिद्ध कवि मिलटन की भावना विनम्रता लिए Does God expect exact labour light - denied मे व्यक्त हुई है वे प्रकृति के साथ साम्यता कर मन को आत्मसतोष प्रदान करते हुए दृष्टिगत हुए है।

"चॉद जैस जग विधि अवतारा। दीन्ह कलक कीन्ह उजियारा।।
जग सूझा एक नयनाहॉ। उआ सूक जस नखतन्ह माहॉ।।

जायसी की वृत्ति का ठीक–ठीक पता तो अभी तक नही लग पाया है, परन्तु आचार्य शुक्ल जी का मत है कि वे किसान का जीवन व्यतीत कर अपना उदर पोषण किया करते थे। जायसी का स्वभाव निर्मल और सरल था। वे विनम्रता के कायल थे परन्तु साथ ही साथ स्पष्ट वक्ता भी थे। जायस वालो का कहना है कि ये एक बार शेरशाह के दरबार मे गये थे। शेरशाह इनके भद्दे एव विकृत चेहरे को देख कर हॅस पडा था। जायसी ने व्यग युक्त हसी का उत्तर बडी विनम्रता से निम्नलिखित दोहे के माध्यम से दिया था। "मोहि का हससि कि कोहरही" अर्थात तू मेरी हसी उडाता है या उस कुम्हार "जगत नियन्ता" की। इस पर शेरशाह बडा लज्जित हुआ और उसने क्षमा मागी। कुछ लोगो का कहना है कि शेरशाह स्वय जायसी का नाम सुनकर उनके पास आया था। उसी समय यह घटना हुई थी। पण्डित रामनरेश जी त्रिपाठी इस घटना को बजाय शेरशाह के अवध के किसी रईस के साथ घटित होना बताते हैं।

इन्हे भगवत कृपा प्राप्त थी। इस सबध मे इनकी कई चमत्कारपूर्ण घटनाओ का उल्लेख पुस्तको मे भी मिलता है। कहा जाता है कि जायसी जब खेत पर काम करते थे। उस समय अपना भोजन वही मगवा लिया करते थे और सत स्वभाव के कारण आस–पास के अन्य लोगो को भी जो क्षुधार्त्त होते थे साथ मे खिला कर खाते थे। यह प्रथा भारत वर्ष मे बहुत समय से चली आ रही थी। आज भी दक्षिण मे कुछ एक ग्रामो मे लोग घर मे ही आवाज लगाकर 'यदि कोई भूखा हो तो भोजन करने आवे' कहकर लकीर पीटने के पश्चात भोजन करते है। हा, तो जायसी भी जो कोई आस–पास दिखाई देता था उसी को साथ बैठाकर भोजन करते थे। एक दिन उन्हे इधर–उधर कोई भी पुरुष दिखाई नही पड़ा। कुछ समय प्रतीक्षा करने के पश्चात उन्हे एक कोढी दिखाई पडा। जायसी ने नि सकोच हो उसे आग्रह पूर्ण ढग से बुलाया और एक ही साथ एक ही बर्तन मे भोजन करने लगे। कोढी के शरीर से पीब चू रहा था। कुछ पीब भोजन सामग्री पर भी आकर पड गया था, कोढी के मना करने पर भी जायसी ने पीब पडे अश मे से ग्रास उठाकर मुह मे रख लिया। जायसी के ग्रास खा चुकने के पश्चात ही वह कोढी अदृश्य हो गया।

जायसी के चमत्कार की एक दूसरी घटना जिसने उन्हे अमेठी मे ही निश्चित रूप से जीवन यापन करने के लिए बाध्य किया था, इस प्रकार कही जाती है कि अमेठी (जिला सुल्तानपुर) के राजा पद्मावत के कुछ एक अशो को एक

भिखारी से, जो गा गाकर दरवाजे दरवाजे भीख मागा करता था सुन कर प्रभावित हुए। विशेषकर इस दोहे पर

> "कवल जो विगसत मानसर, बिनु जल गयउ सुखाई।
>
> सूखि बेलि फिरि पलुहई, जो पिव सीचहि आई।।

राजा बडे ही मुग्ध हो गये। उन्होने फकीर से रचयिता का नाम पूछा और तत्पश्चात मलिक मुहम्मद जायसी को एक सरदार द्वारा अमेठी बुलवा लिया। तब से जायसी अमेठी मे ही रह कर जीवन यापन करने लगे। राजा के कोई सन्तान न थी। जायसी से राजा की मनोव्यथा छिप न सकी अत उन्होने राजा को पुत्रोत्पन्न होने के लिए आशीर्वाद दिया और इस प्रकार मलिक मुहम्मद जायसी की कृपा से राजा का वश चला।

तीसरी घटना उनके अन्तिम दिनो के आस पास की है। जनश्रुति के आधार पर यह कहा जाता है कि उन्होने अपनी मृत्यु के सबध मे अमेठी के राजा से कहा था कि "मै किसी शिकारी की गोली से मारा जाऊँगा।" राजा ने अपना प्रियत्व प्रदर्शित करते हुए अमेठी के आस–पास के जगलो मे शिकार की मनाही करवा दी थी। एक दिन शिकारी को जगल मे बाघ दिखाई पडा और उसने आत्मरक्षार्थ उस पर गोली से बार किया परन्तु पास जाने पर उसने बाघ के स्थान पर जायसी को मृतावस्था मे पाया। कहा जाता है कि योगबल से जायसी विभिन्न प्रकार के रूप धारण कर लिया करते थे।

जायसी को दाम्पत्य और सन्तान सुख प्राप्त था अथवा नही इस सबध मे अधिकृत रूप से अभी तक कुछ भी नही कहा जा सका है आचार्य रामचन्द्र जी शुक्ल ने जनश्रुति के आधार पर ही इस सबध मे अपने विचार करते हुए लिखा है।

"कहते है कि जायसी के पुत्र थे, पर वे मकान के नीचे दब कर या ऐसी किसी और दुर्घटना मे मर गये। तब से जायसी ससार से और भी विरक्त हो गये और कुछ दिनो मे घर–बार छोडकर इधर–उधर फकीर होकर घूमने लग।"

उस समय के सिद्ध फकीरो मे जायसी का मान था। वे मलिक मुहम्मद निजामुद्दीन औलिया की शिष्य–परम्परा मे थे। इस परम्परा की दो शाखाये मिलती है। पहली मानिकापुर–कालपी और दूसरी जायस के नाम से विख्यात है जायसी ने इन दोनो ही की चर्चा की है। उन्होने निजामुद्दीन औलिया की शिष्य परम्परा के अन्तर्गत आने वाले जिन लोगो की चर्चा की है उनके नाम सैयद असरफ और शेख मोहिदी "मुहीउद्दीन" है। सैयद असरफ जायस और शेख मुहीउद्दीन

कालपी वाली परम्परा से सबधित हैं जायसी उदार थे अत उन्होने सकीर्णता को त्यागकर अपने सम सामयिक प्रसिद्ध सन्तो और धर्म गुरुओ की वन्दना की है वे वाद विवाद से दूर रहने वाले एकान्त साधक थे सरल हृदय और उदारवृत्ति ही उनकी धरोहर थी जिसका दामन उन्होने जीवन के आदि से अन्त तक कभी भी नही छोडा था। वे सतसगी जीव थे। जहॉ जो कुछ अच्छा देखा उसका सारतत्व सरल हृदय से स्वीकार कर रचनाओ मे अभिव्यजित करना ही उनका लक्ष्य था। उन्होने सूफी मुसलमान फकीरो, गोरख पथी, वेदान्ती तथा हिन्दुओ की पौराणिक कहानियो से बहुत कुछ जानकारी प्राप्त की थी। उनको वेदान्त और यौगिक क्रियाओ का भी ज्ञान था परन्तु उनका ज्ञान बाह्याधार पर ही आधारित न होकर आन्तरिक अनुभूति पर भी अवलम्बित रहता था। ज्ञान उनके लिए अपच नही हो गया था और न वे उसके बोझ से ही दब से रहे थे। ज्ञान सज्ञा के अन्तर्गत आने वाली जो कुछ भी वस्तु उनके पास थी वे उसे पडितो का प्रसाद ही मानते थे।

"हौं पडितन्ह केर पछलगा। किछु कहि चला तबल देई डगा।।"

वे विधि विधान के पोषक थे परन्तु धर्मान्ध न होकर ज्ञान चक्षुओ से जो कुछ आत्मसात करते थे उसे सीधे सादे शब्दो मे प्रस्फुटित किया करते थे।

इनके रचित ग्रन्थो की सख्या २१ बताई जाती है किन्तु अभी तक केवल चार ही कृतिया प्रकाश मे आ सकी हैं जिनके नाम पद्मावत, आखिरी कलाम, अखरावट, और कहारानामा है जायस के रहने वाले इसके अतिरिक्त पोस्ती नामा और नानावत नामक दो पुस्तको को इन्ही की लिखी हुई बतलाते है। इनकी मृत्यु–तिथि के सबध मे भी अनेक मत है। काजी नसुरुद्दीन जायसी ने अपनी याददास्त "डायरी" मे भी मलिक मुहम्मद जायसी का मृत्यु काल चार रजब नव सै उन्चास हिजरी "सन् १५४२ ई." दिया है इस तिथि तथा "भा अवतार मोर नव सदी" का सामजस्य करने पर मृत्यु के समय जायसी की अवस्था ४६ वर्ष की निश्चित होती हैं आचार्य शुक्ल जी का कहना है कि जायसी ने पद्मावती के उपसहार मे बृद्धावस्था का जो वर्णन किया है वह स्वत· अनुभूत सा जान पडता हैं अतः वे दीर्घायु अवश्य रहे होगे। जनश्रुति के आधार पर उनका मृत्युकाल सवत् १६०० माना जाता है।

जायसी की कब्र अमेठी के राजा के वर्तमान कोट से पौन मील की दूरी पर आज भी वर्तमान है मगरावन स्थित इस समाधि पर आज भी लोग इस मनीषी के प्रति श्रद्धाजलि अर्पित करने के लिए दूर–दूर से पहुँचते हैं।

तृतीय

पद्मावत का कथानक

पिछले अध्याय मे यह सकेत किया जा चुका है कि जायसी विधि–परम्परा से प्रभावित भगवद्भक्त थे। अत पद्मावत का प्रारम्भ उन्होने जगतन्नियता की वन्दना के साथ–साथ उसकी महत्ता एव अनेक पौराणिक कथाओ का सकेत करते हुए किया है स्मृति–खण्ड मे उन्होने परब्रह्म परमात्मा तथा अपने सबध मे कुछेक बातो का वर्णन किया है।

"अलख अरूप अवरन सो कर्ता। वह सब सो सब ओहिसो वर्ता

परगट गुपुत सो सरब विआपी। धरमी चीन्ह न चीन्हैं पापी

न होहि पूत न पिता न माता। ना ओहि कुटुब न कोई सगनाता।।

जना न काहु न कोई ओहिजना। जहं लगि सब ताकर सिरजना।।"

(परमात्मा के संबंध में)

"सरे साहि देहली सुलतानू। चारिउ खड तपै जस भानू।।"

(अपने समय के राजा के सबध मे)

कथा का प्रारम्भ सिहल द्वीप की महत्ता से होता है सिहल द्वीप एक द्वीप है । दिया, सरन, जबू, लक, गर्भस्थल तथा महुस्थल समस्त द्वीपो से श्रेष्ठ सिहल द्वीप का राजा गधर्वसेन बडा प्रतापी है।

"गंधर्बसेन सुगध नरेसू। सो राजा वह ताकर देसू।।

लका सुना जो रावण राजू। तेहू चाहि बड़ ताकर साजू।।"

उसकी पुत्री का नाम पद्मावती है। जो रूप और गुण दोनो ही से सम्पन्न है कालान्तर मे पद्मावती सयानी होती है परिणय अवस्था प्राप्त करने पर भी जब पद्मावती का पाणिग्रहण नही हुआ उस समय वह अपनी मनोव्यथा हीरामन नामक एक अद्भुत तोते से, जो मनुष्य की वाणी को हृदयगम कर उसी की वाणी मे उत्तर देने की क्षमता रखता था, व्यक्त करती है।

"एक दिवस पद्मावति रानी। हीरामनि तह कहा सयानी।।

सुनु हीरामनि कहौं बुझाई। दिनदिन मदन सतावै आई।।

पिता हमार न चालै बाता। त्रासहि बोल सकै नहि माता।।

देस देस के बर मोहि आवहिं। पिता हमार न आख लगावहि।।''

तोते ने देश देशान्तर घूम–घूम कर अच्छे और अनुरूप वर की खोज करने का आश्वासन दिया। इस चर्चा को किसी ने राजा तक पहुचा दिया राजा हीरामन तोते से बहुत रुष्ट हुआ और उसने उसके मार डालने के लिए आज्ञा दी। पद्मावती ने दूसरे के सीखे हुए वचनो को कहने की क्रिया तथा पछी की दीनता का आधार लेकर उसे प्राणो की रक्षा की। इस घटना के बाद से तोते का मन खिन्न रहने लगा और उसने सिहलद्वीप को छोडकर जाने का निश्चय भी कर लिया। एक दिन पद्मावती सखियो के साथ मानसरोवर मे स्नान कर रही थी हीरामन ने इसी अवसर को उपयुक्त समझ कर पद्मावती का साथ छोड देने का निश्चय किया और उड गया। कुछ समय बाद हीरामन तोता चारे के लोभ मे पडकर बहेलिये द्वारा पकडा गया। बहेलिया उसे बाजार मे बेचने के लिए ले गया। उसी बाजार मे चित्तौर के एक व्यापारी के साथ एक दीन ब्राह्मण भी अपनी तकदीर अजमाने आया था। उसने सुग्गे के चेहरे–मोहरे से उसकी विलक्षमता का आभास पाकर उसे बहेलिये से मोल ले लिया। सुवे को लेकर वह चित्तौड चला आया और सुख पूर्वक जीवनयापन करने लगा। चित्तौड मे उस समय राज चित्रसेन की मृत्यु के बाद उसका पुत्र रत्नसेन राज्य कर रहा था। हीरामन तोते की प्रसशा सुनकर राजा रत्नसेन ने ब्राह्मण को एक लाख रुपये देकर उसे मोल ले लिया। एक दिन रत्नसेन शिकार की इच्छा से बाहर गया था। उसकी रानी नागमती बडी रूपवती थी उसने शृगार करने के पश्चात निजरूप की प्रशसा तोते से सुनने की इच्छा से हीरामन से प्रश्न किया कि क्या मेरे समान सुन्दर और कोई भी स्त्री इस ससार मे है? रानी के इस प्रश्न पर सुआ–हॅसा और उसने सिहल की पदि्मिनी स्त्रियो का वर्णन करते हुए पद्मावती के रूप की प्रशसा की। रानी नागमती पद्मावती की सौन्दर्य प्रशस्ति सुनकर तोते को शका की दृष्टि से देखने लगी। राजा को अपने प्रेमपाश मे जकडे रखने की इच्छा से उसने धाय से तोते को मार डालने के लिए कहा। धाय ने तोते के प्रति राजा के प्रेमभाव का स्मरण कर उसे छिपा रखा। शिकार से लौटने पर जब राजा ने सूवे को न देखा तब वह बडा क्रुद्ध हुआ। अन्त मे तोता उसके सम्मुख उपस्थित किया गया। राजा ने तोते से सत्य भाषण की महिमा का वर्णन करते हुए सत्य–सत्य सब बाते कहने के लिए कहा। तोते ने रानी नागमती से सबधित समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। राजा ने पद्मावती का रूप वर्णन सुनने की जिज्ञासा प्रकट की। तोते ने राजा को पद्मावती का नखसिख वर्णन सुनाया जिससे राजा के मन मे पद्मावती के प्रति पूर्वाराग का अभ्युदय हुआ। नागमती को जिस बात की

आशका थी वही हो कर रही। राजा, पद्मावती को प्राप्त करने के लिए सूआ को मार्गदर्शक रूप मे साथ लेकर जोगी का वेष बनाकर घर से निकल पडा। उसके साथ सोलह हजार कुँअर भी जोगी होकर चल पडे। मार्ग की कठिनाइयो को पार करते हुए कलिग देश के राजा गजपति की सहायता से समस्त साथियो सहित राजा रत्नसेन सिहल द्वीप की ओर चल पडा। मार्ग मे क्षार समुद्र, छीर समुद्र, दधि समुद्र, उदधि समुद्र, सुरा समुद्र और किलकिला समुद्र तथा मान सरोवर समुद्र को पार कर सभी लोग सिहल द्वीप पहुचे। राजा रत्न सेन जो जोगी के भेष मे था सिहल द्वीप स्थित महादेव जी के मदिर मे पहुँच कर तपस्या करने लगा। और हीरामन राजा से यह कह कर कि पद्मावती वसन्त पचमी के दिन इसी मदिर मे दर्शन करने आया करती है अत. उसी दिन तुम्हे उसके दर्शन प्राप्त हो सकेगे। पद्मावती के पास पहुँचा। हीरामन को देखते ही पद्मावती ने पुन: जीवन प्राप्त किया। अधिक मोह और अधिक दिनो के बाद मिलने के कारण पद्मावती हीरामन को कठ से लगा कर बडी देर तक रोती रही। सुआ ने पद्मावती से राजा रत्नसेन की गौरवगाथा तथा प्रेमाकर्षण जनित व्यथा का वर्णन कर उसे रत्नसेन के प्रति आकर्षित करना प्रारम्भ किया। पद्मावती के मन मे राजा रत्नसेन का प्रेमाकुर धीरे–धीरे पल्लवित और विकसित होने लगा। उसने राजा को वरण करने तथा बसत पचमी के दिन उससे मिलने का भी निश्चय किया।

इसके पश्चात वसत पचमी के दिन पद्मावती मदिर मे पहुच कर राजा रत्नसेन के दर्शन कर राजा को हीरामन के वर्णन के अनुसार ही पाती है। राजा रत्नसेन पद्मावती को देखते ही मूर्छित हो जाता है पद्मावती राजा की मूर्छितावस्था मे ही उसके ह्रदय पर यह लिख कर कि 'जोगी तूने भिक्षा प्राप्त करने योग्य योग नही सीखा, जब फल प्राप्ति का समय आया तब तू सो गया,' वापस लौट जाती है। होश आने पर राजा बहुत पश्चाताप करता है और आत्महत्या करने के लिए तत्पर हो जाता है। उसी समय कोढी के वेश मे महादेव पार्वती सहित आ उपस्थित होते है। पार्वती राजा रत्नसेन की प्रेम परीक्षा लेने के हेतु राजा से पद्मावती को भूल कर स्वय उन्ही को स्वीकार करने के लिए आग्रह करती है। राजा के इस उत्तर पर कि मुझे मद्मावती को छोडकर और किसी से कुछ प्रयोजन नही पार्वती और महादेव जी दोनो ही प्रसन्न होते है और महादेव जी चलते समय राजा को सिद्धि गुटिका दे जाते हैं।

सिद्धि गुटिका की सहायता एव हीरामन द्वारा पद्मावती का सन्देश पाकर राजा रत्नसेन सिहल द्वीप के आन्तरिक महल मे जा पहुचा। प्रेम–व्यापार मे क्रोध नही करना चाहिए। इसको मूल मन्त्र मानने के कारण राजा रत्सेन गन्धर्व सेन

के सिपाहियो के द्वारा बन्दी बना लिया गया। राजाज्ञा से जब उसे सूली हेतु प्रस्तुत किया गया उस समय महादेव जी ने भाट का रूप धर कर राजा गन्धर्व सेन की वध आज्ञा वापस कर अपनी कन्या पद्मावती को व्याह देने की सलाह दी। राजा इस पर क्रुद्ध हो गया। युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो जाने पर राजा गन्धर्व सेन ने जब महादेव तथा हनुमान जी को योगियो की ओर से लडते हुए देखा तो घबरा गया और बडी धूमधाम के साथ पद्मावती का पाणिग्रहण राजा रत्नसेन के साथ कर दिया।

उधर चित्तौर मे नागमती विरहावस्था मे अपने दिन व्यतीत कर रही थी। राजा के अभाव मे चित्तौर की स्थिति भी बिगड रही थी। पछी द्वारा नागमती और चित्तौर का समाचार सुनकर राजा रत्नसेन अपार धनराशि तथा पद्मावती को लेकर स्वदेश की ओर चला। मार्ग मे समुद्र ने याचक का रूप धर कर याचना की। राजा ने लोभ के वशीभूत होकर उसे निराश ही वापस कर दिया। इस तिरस्कार के फलस्वरूप उसे राह मे अनेक कष्ट उठाने पडे। सब धनराशि एव पद्मावती से भी हाथ धोकर तूफान के मध्य एक तख्ते के सहारे बहते दहते वह मूगो के टीले के समीप आ गया। वह मनोभिलषित वस्तु पाकर खो बैठा था इससे हतोत्साह हो गले मे कटार मारना ही चाहता था कि समुद्र ने ब्राह्मण रूप धर कर उसे सान्त्वना दी। इधर पद्मावती मूर्छितावस्था मे बहती बहती समुद्र की कन्या लक्ष्मी के हाथो आ पडी थी। पद्मावती के होश आने पर उससे समस्त विवरण जान कर लक्ष्मी ने उसे आश्वस्त कर रत्नसेन से मिलाने का वचन दिया।

लक्ष्मी के प्रयास से राजा रत्नसेन और पद्मावती दोनो का पुनर्मिलन होता है। लक्ष्मी राजा रत्नसेन की प्रेम परीक्षा मे सफलता प्राप्ति से प्रसन्न हो उठती है। चलते समय समुद्र और लक्ष्मी ने राजा के समस्त साथियो तथा धनराशि के अपनी ओर से भी अमृत, हस, राजपक्षी, शार्दूल, और पारस पत्थर ला उपस्थित किये। समस्त पदार्थों को ले कर साथियो सहित राजा रत्नसेन और पद्मावती सुख पूर्वक चित्तौड पहुच कर जीवन यापन करने लगते है। राजा को नागमती से नागसेन और पद्मावती से कमलसेन नामक दो पुत्रो की प्राप्ति भी होती है।

चित्तौड की राजसभा मे राघव चेतन एक पडित था जिसे यक्षिणी सिद्ध थी। यक्षिणी के प्रभाव से अपनी बात रखने के लिए उसने परिवा को ही दूज का चॉद दिखला दिया था जिससे रुष्ट होकर राजा ने उसे देश निकाले का दड दिया। दूरदर्शी होने के कारण पद्मावती राघव को असन्तुष्ट होकर नही जाने देना चाहती थी। अत उसने झरोखे पर से अपने हाथ का एक कगन दान के बहाने से प्रदान किया। राघव चेतन रानी पद्मावती का रूप देखकर मूर्छित हो गया। होश आने

पर उसने यह सोचा कि दूसरा कगन प्राप्त करने तथा राजा से अपने अपमान का बदला लेने का एकमात्र उपाय यही है कि अलाउद्दीन के समीप पहुचकर उसे पद्मावती के सौन्दर्य के प्रति आकर्षित कर चित्तौड पर आक्रामक बना लाऊ। यह विचार कर उसे कार्यान्वित करने के हेतु वह दिल्ली पहुचा। दिल्ली पहुच कर उसने अलाउद्दीन को कगन दिखाते हुए पदमावती के रुप का वर्णन किया अलाउद्दीन ने सिरजा नामक दूत को भेजकर राजा से पद्मावती को तुरन्त भेज देने के लिए कहा और प्रतिउत्तर में नकारात्मक उत्तर प्राप्त होते ही चित्तौड पर चढाई कर दी। ८ वर्षों के अनवरत युद्ध के बाद भी जब किसी प्रकार का हल निकलने की आशा अलाउद्दीन को न हुई तो उसने राजा रत्नसेन के पास सन्धि का प्रस्ताव भेजा जिसमे पद्मावती को न माग कर समुद्र से प्राप्त पाचो वस्तुओ के पाने की इच्छा व्यक्त की गई थी। राजा ने विश्वासपात्र सरदारो की इच्छा के विरुद्ध इस प्रस्ताव को स्वीकार कर अलाउद्दीन के मन मे पद्मावती को प्राप्त करने की कामना पुन जाग्रत हो उठी। अलाउद्दीन को विदा करने के अभिप्राय से जब रत्नसेन उसके साथ–साथ चल रहा था तो अतिम फाटक पर अलाउद्दीन ने उसे अपने सिपाहियो से कैद करा दिया। राजा रत्नसेन कैद कर दिल्ली पहुचा दिये गये और उन्हे वहा अनेक प्रकार की यन्त्रणाओ से पीडित किया जाने लगा। इधर कुम्भलनेर के राजा देवपाल ने कुमुदनी नामक दूती के द्वारा पद्मावती पर अपना प्रेमजाल फैलाने की चेष्टा की। अलाउद्दीन ने भी एक जोगिन को पद्मावती को बहका कर दिल्ली लिवा लाने के अभिप्राय से भेजा था। परन्तु इन लोगो की एक भी न चली और वे सब तिरस्कृत हो निराशावस्था मे ही वापस चली गई। कालान्तर मे पद्मावती ने गोरा और बादल नामक विश्वस्त सरदारो से राजा को छुडा कर लाने की प्रार्थना की। इन दोनो सरदारो ने 'शठे शाठ्यम समाचरेत्' को मूल मन्त्र मानकर १६०० ढकी पालकियो के भीतर सशस्त्र राजपूत सरदारो तथा एक सर्वश्रेष्ठ पालकी मे औजार सहित एक लोहार को बिठा कर दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। गोरा के पुत्र बादल की अवस्था कम थी उसका गौना दिल्ली प्रस्थान के दिन ही आया था। गोरा ने बादशाह के यहा यह खबर भिजवाई कि पद्मावती एक बार रत्नसेन से मिलने के पश्चात् अपने आप को आप के हाथो सौप देगी। अलाउद्दीन ने पद्मावती को राजा पत्नसेन से मिलने की आज्ञा प्रदान की। सर्वश्रेष्ठ पालकी राजा रत्नसेन के समीप पहुचाई गयी। लोहार ने राजा की बेडी काट दी और राजा शस्त्र ले घोडे पर सवार हो बादल के साथ चित्तौर आ पहुचा। इधर गोरा की अध्यक्षता मे १६०० राजपूतो ने मुसलमानो का सामना करते हुए आत्मोत्सर्ग किया। गोरा भी सिरजा के हाथ से मारा गया।

राजा रत्नसेन ने चित्तौड पहुँच कर राजा देवपाल को उसके दुष्कर्म का प्रतिफल देने के लिए चढाई कर दी। युद्ध मे राजा रत्नसेन ने यद्यपि देवपाल को मार डाला परन्तु स्वय भी उसके हाथो मारा गया। इधर अलाउद्दीन ने भी चित्तौड पर चढाई कर दी। रानी नागमती और पद्मावती दोनो राजा रत्नसेन के साथ सती हो गयी। बादल ने प्राण रहते किले की रक्षा की परन्तु वह भी मारा गया और अन्त मे चित्तौड के किले पर मुसलमानो का अधिकार हो गया।

पद्मावती का कथानक मिश्रित है जायसी ने इतिहास और कल्पना का सम्मिश्रण किया है। रत्नसेन, अलाउद्दीन के अतिरिक्त केवल कुछ एक ही पात्र ऐतिहासिक है। सम्पूर्ण काव्य के अन्दर अन्योक्ति के द्वारा पाठको को आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित करने का प्रयास किया गया है ५७ खडो मे सम्पूर्ण कथा कहने के पश्चात ५८ वे खड मे उपसहार के अन्तर्गत कवि ने स्वय कहा है कि .

"मैं एहि अरथ पंडितन बूझा। कहा कि हम्ह किछू ओर न सूझा।।
चौदह भुवन जो तर उपराही। ते सब मानुष के घट माही।।
तन चितउर, मन राजा कीन्हा। हिय सिहल बुधि पद्मिनी चीन्हा।।
'गुरु सूआ जेहि पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत का निरगुन पावा।।
नागमती यह दुनिया धंधा। बाचा सोई न एहि चित बंधा।
राघव दूत सोई सौतानू। माया अलाउद्दीन सुलतानू।।
प्रेम कथा यहि भांति विचारहु। बूझ लेहु जो बूझै पारहु।।"

पद्मावत का कथानक सुगठित है। बीच बीच मे प्रकृति वर्णन तथा पात्रो की मानसिक भावनाओ एव आध्यात्मिक अन्योक्तियो का समवेश हुआ है परन्तु उससे कथा प्रवाह मे कही भी व्याघात नही पहुचा है ध्वनियॉ सरस और प्रभावोत्पादक होने के कारण कथानक आकर्षक बन पडा है।

चतुर्थ

जायसी का काव्य

जायसी द्वारा रचित जितनी भी पुस्तके अभी तक प्रकाश मे आई है उसमे पद्मावत उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति स्वीरकार की गई है अखरावट, आखिरी कलाम और कहारा नामा (महरी बाईसी) मे कवि का क्षेत्र सीमित रहा है। विषय भी रागात्मक प्रवृत्ति की ओर उन्मुख न होने के कारण सार्वजनिक विषय नही हो सके है। यही कारण है कि जायसी की काव्य प्रतिभा के मूल्याकन के लिए आलोचको ने पद्मावत को ही मुख्य आधार माना है। तुलसी बरवै रामायण रामलला नहछू, जानकी मगल तथा पार्वती मगल आदि रचनाओ की भॉति अखरावट, आखिरी कलाम और कहारानामा भी आलोचको को अधिक आकर्षित करने मे सफल नही हो सकी है।

कबीर की काव्य-प्रतिभा पर दृष्टिपात करते समय यह स्वीकार किया है कि काव्यतत्व के मुख्यत. चार प्रमुख अग हैं भाव, कल्पना, बुद्धि और शैली। इन चारो के सामजस्य से कलाकार सत्य शिव और सुन्दर से कला को जन्म देने मे सफलता प्राप्त करता है कल्पना भाव को पुष्ट कर अभिव्यक्ति मे सहायता पहुँचाती है। बुद्धितत्व कल्पना को उच्छश्रृखला होने से बचाये रहता है इससे सत्य और शिव का अस्तित्व सुरक्षित रहता है। इसके अतिरिक्त चौथा तत्व शैली है जिसमे कवि की आत्मा के दर्शन होने का सौभाग्य प्राप्त होता है। इस तत्व को अलकार, शब्द-शक्ति और शब्द विन्यास से सहायता प्राप्त होती रहती है सभ्यता के विकास के साथ-साथ कविता स्वाभाविकता से कृत्रिमता की ओर उन्मुख हो रही है बच्चे को जो कविताये प्रारम्भ मे रुचिकर होती है वे कालान्तर मे अधिक देर तक उसे आकर्षित नही कर पाती हैं। आज के युग मे तो रोटी की समस्या हल करने में ही समस्त मानव तथा उसकी शक्तियां लगी रहती हैं यही कारण है कि इन कवियो की भांति प्राचीन कवियो मे रोटी रोजी का हल ढूढ निकालने का अवसर नही प्राप्त होते है। उनमे साहित्यान्तर्गत आने वाले दोनो ही मुख्य स्वरूपो (अन्तर्जगत और बाह्यजगत्) की चर्चा मिलती है प्राचीन समय के कवियो ने बाह्य जगत और अन्तर्जगत मे सामजस्य स्थापित कर एक नव जगत् की सृष्टि करने का प्रयास किया है। जहॉ देवताओ और मानवों का सम्मिलन कराने की चेष्टा की गई हैं जायसी ने पद्मावत मे इसी दृष्टिकोण को अपनाया है। वे लौकिक प्रेमाख्यान का

वर्णन करते हुए अपने विचारो के मोतियो को सूक्तियो के रूप मे बीच–बीच मे उपस्थित करते चलते है। उदाहरणार्थ–

नवो खण्ड नवपौरी, औ तह बज्र केवार।

चारि बसेरे सौं, चढै सत सौं उतरै पार।।

काव्य–तत्वो का समावेश कर आदर्श चरित्रो की सृष्टि करना कवि का अपेक्षित कर्म माना गया है व्यास, बाल्मीकि, होमर आदि अनेक कवियो की भॉति जायसी के बाद तुलसीदास ने भी आदर्श चरित्रो की चर्चा की है। हिन्दी साहित्य मे यद्यपि तुलसी के राम और सीता के चरित्र अद्वितीय है परन्तु जायसी के पद्मावत द्वारा रत्नसेन और पद्मावती को जो स्थायित्व प्राप्त हुआ हैं वह कवि के कौशल की महानता का हमे अनुभव कराती है। पद्मावत मे पद्मावती और रत्नसेन के ही चरित्रो की प्रधानता है अन्य चरित्रो की उद्भावना महाकाव्य के लक्षणान्तर्गत प्रधान चरित्रों के विकास के हेतु ही हुई है राजा रत्नसेन और पद्मावती के साथ ही साथ कथा का आविर्भाव, विकास तथा अन्त होता है राजा रत्नसेन और पद्मावती एव नागमती तीनो ही सच्चे प्रेमियो का आदर्श पूरा करते हुए दिखाई पडते है।

भाषा– जायसी की भाषा पूर्वी बोली से ओतप्रोत अवधी है। मुसलमान तथा कुरान के ज्ञाता होते हुए भी जायसी ने सस्कृत के तत्सम शब्दो का प्रयोग किया है। वे इस देश की भाषा को स्वीकार कर चुके थे। अत सेवा की भावना से उन्होंने कविता के माध्यम से भारती की सेवा मे जो कुछ भी अर्पित किया वह आज भी अपनी आभा से उसकी शोभा को बढा रहा है उनकी तत्सम पदावली, हिन्दी के प्रति अनुराग, उदार वृत्ति आदि को देखते हुए कुछ एक अध्येताओ का ऐसा विचार है कि हो सकता है कि जायसी भारत के परिवर्तित हिन्दुओ मे से हुए मुसलमान हो और पैत्रिक अर्जित शब्दावली को सुरक्षित रखा हो। अत· भारतीय सस्कृति, कहानी, विचार आदि का दामन नही छोड सके। पद्मावत की भाषा के सबध मे डा वासुदेव शरण जी का मत, जो समीचीन है, उद्धृत करना आवश्यक समझता हू। वे लिखते है "पद्मावत की भाषा ऊपर से देखने पर बोल–चाल की देहाती अवधी कही जाती है, किन्तु वस्तुत· वह अत्यत प्रौढ, अर्थ सम्पृक्त समर्थ शैली है। अनेक स्थानो पर जायसी ने ऐसी श्लेषात्मक भाषा का प्रयोग किया जिसके अर्थ लगातार कई दोहो तक एक से अधिक पक्षो मे पूरे उतरते है कवि की इस प्रकार की श्लेषात्मक शैली आश्चर्य कारिणी है सरल अवधी के शब्दो मे जायसी ने अर्थो का चमत्कार उत्पन्न किया है। उनसे उनकी भाषा की असाधारण शक्ति ज्ञात होती है।"

जायसी की भाषा विषयक चर्चा करते हुए आचार्य शुक्ल जी ने अवधी की विशेषताओ का विशद वर्णन किया है यहॉ पर दो एक बाते इस सबध मे भी कहना अनावश्यक नही होगा। 'जायसी का अवधी पर पूर्ण अधिकार था। वे उसकी बारीकियो से पूर्णतया अवगत थे। उन्होने अपने प्रयोगो मे अवधी के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेदो का ध्यान रखा है अवधी मे सज्ञा और सर्वनाम मे 'ऐ' लग जाने से कर्ता कारक का बोध होता है और यही 'ऐ' जब क्रिया के साथ लगता है तब लिए अर्थ का बोध होता है। जैसे .

कर्ताकारक के रूप मे.. राजै राजा ने, सबै : सबने।

लिये अर्थ मे सुनै सुनने के लिए।

जायसी की भाषा बोलचाल की सीधी साधी और सरस है शुक्ल जी ने जायसी की भाषा पर अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है। कि जायसी की भाषा बहुत मधुर है पर उसका माधुर्य निराला है। वह माधुर्य भाषा का माधुर्य है। सस्कृत का माधुर्य नही। वह सस्कृत की कोमल कात पदावली पर अवलम्बित नही। उसमे अवधी अपनी निज की मिठास लिए हुए है।' इस प्रकार हम देखते है कि कोई जायसी की श्लेषात्मक भाषा और कोई जायसी द्वारा उपयुक्त अवधी के माधुर्य पर रीझा है।

भाव और कल्पना भावो का प्रकाशन भाषा द्वारा ही हुआ करता है। जायसी अवधी के प्रथम कवि ही नही उसके प्रवर्तक है। उन्होने अवधी को घरो की चहारदीवारी से निकाल कर पठन पाठन के योग्य बनाया। अत भाषा पर अधिकार होने के नाते जायसी ने जिस भाव को व्यक्त करना चाहा है वह सुन्दर बन पडा है यद्यपि प्रेम की पीर का निजी अनुभव जायसी को नही हुआ था परन्तु प्रेमान्तर्गत आने वाले जिन सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावो का प्रस्फुटन जायसी द्वारा किया गया है वह अनुपमेय है प्राय. ऐसा देखा गया है कि भावातिरेक मे भाषा कुठित हो जाती है। (When the heart is full tongues become mute) या तो हम आवश्यकता से कुछ अधिक कह जाते है अथवा कुछ छोड जाते है और कभी–कभी ऐसा भी होता है कि हम भावो के तारतम्य परं ठीक से नियत्रण न रखने के कारण कुछ ऐसा कह या लिख जाते है जो हास्यास्पद होता है। प्रबध काव्य के रूप में पद्मावत अपने मे अनेक भावो का समावेश किये हुए है। कवि ने छोटी से छोटी बात पर ध्यान रखकर उसका वर्णन करते समय भावो की अभिव्यक्ति करने मे सफलता प्राप्त की है। जायसी की भाव प्रकाशन सबधी जो कुशलता है उसके दो रूप है। प्रथम तो समस्त भावो को व्यवस्थित रूप मे प्रस्तुत करना तथा दूसरा उसकी अभिव्यक्ति से पाठक के मन को अपने साथ ले चलने मे सफलता प्राप्त करना हैं कथा वर्णन

के साथ–साथ भावो की पखुडिया मानो खुलती जाती है। एक के बाद एक तत्सम्बधित भाव बडी ही कुशलता के साथ व्यक्त किये गये है। उदाहरणार्थ–

"काल आई दिखलाई साटी। उठि जिय चला छाड़ि के माटी।।
काकर लोग कुटुम घर बारू। काकर अर्थ द्रव्य ससारू।।
वही घडी सब भयो परावा। आपन सोई जो परसा खावा।।
रहि जे हितू साथ के नेगी। सबै लागि काढन तेहि बेगी।।
हाथ झार जस चलै जुआरी। तजा राज ह्वै, चला भिखारी।।
जब लगि जीव रतन सब काहा। मा बिनु जीवन कौडी लाहा।।
गढ सौपा तेहि बादल, गये टिकठि वसुदेव।
छोडी राम अयोध्या, जो भावै सो लेव।।"

राजा रत्नसेन की मृत्यु हो गई है आत्मा का शरीर से सबध बिछुड गया है इसका क्रमश कितना सरस एव भावपूर्ण चित्रण हुआ है यह पाठक स्वयमेव अनुभव कर रहे होगे। प्राणी जन्म होते ही क्रमश परिवार, अर्थ तथा माया और माया के माध्यम से अन्य लोगो को जानता है और उसका अन्त होने पर वस्तुत. क्या स्थिति होती है इसका वर्णन देखिये–

और 'छोडी राम अयोध्या सो भावै सो लेव' से सजीव और क्या हो सकता है?

भाषा और भाव के सामजस्य से वर्णन सुन्दन बन पडा है।

कल्पना से भावो की पुष्टि मे सहायता की बात को छोडकर यदि यह कहा जाये कि पद्मावत मे कुछ एक पात्रो तथा कतिपय प्रधान घटनाओ को छोडकर अधिकाश काल्पनिक हैं तो अतिशयोक्ति नही होगी। भावो की पुष्टि कल्पना के द्वारा न की गई हो ऐसी बात भी नही है निम्नलिखित चौपाइयो से अभीष्ट मन्तव्य की पुष्टि हो जायगी इस विचार से उद्‌धृत करना आवश्यक समझता हू।

"रतन सेन बिनवा कर जोरी। अस्तुति जोग जीभ नहि मोरी।।
सहस जीभ जौ होहिं गोसाई। कहि न जाइ अस्तुति जहँ ताई।।
कॉच रहा तुम कंचन कीन्हा। तब भा रतन जोति तुम्ह दीन्हा।।
गंगा जो निर्मल नीर कुलीना। नार मिले जल होइ मलीना।।"

जायसी ने बुद्धि–तत्व का भी सहयोग स्वीकार किया है। उनकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म घटनाओ की एकबद्धता, विभिन्न अलकारो की योजना, बारहमासा,

नखसिख वर्णन आदि ऐसे प्रसग है जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि उन्होने बुद्धि–तत्व की सहायता से भाव और कल्पना पर नियत्रण रखने की चेष्टा की है। परन्तु कुछ ऐसे भी स्थल है जहा उनकी कल्पना उच्छृखलता का रूप ध ारण कर बुद्ध–तत्व का नियत्रण स्वीकार नही करती है। उदाहरणार्थ–

"का पूछहु तुम घातु निछोही। जो गुरु कीन्ह अन्तरपट ओही।।
सिधि गुटिका अब मो संग कहा। भएउ राग, सत हिये न रहा।।
सो न रूप जासौं दुख खोलौं। गएउ भरोस तहाँ का बोलौं।।
जहँ लोना बिरवा कै जाती। कहि कै संदेस आन को पाती।।
कै जो पार हरतार करीजै। गंधक देखि अबहि जिव दीजै।।
तुम जोरा कैसूर मयकू। मुनि विछोहि सो लीन कलकू।।

आचार्य शुक्ल जी के शब्दो मे "इन उक्तियो मे सोन, रूप लोना, जोरा कै आादि मे श्लेष और मुद्रा का कुछ चमत्कार अवश्य है पर यह सारा कथन रस मे सहायता पहुँचाता नही जान पडता। कुछ समाधान यह कह कर किया जा सकता है कि राजा रत्नसेन जोगी होकर अनेक प्रकार के साधुओ का सत्सग कर चुका था। इससे विप्रलम्भ दशा मे उसका यह पारिभाषिक प्रलाप बहुत अनुचित नही। पर कवि ने इस दृष्टि से इसकी योजना नही की है पारिभाषिक शब्दो से भरे कुछ प्रसग घुसेडने का जायसी को भी शौक रहा है जैसे पद्मावती के मुह से "तब लगि रग न राचै जौ लगि होई न चून" है सुनते ही राजा रत्नसेन पानो की जातियॉ गिनाने लगता है। हौ तुव नेह पडा पियर भा पानू। पेडा हुन्त सोन रास बखानू।।" इसी प्रकार किसी शब्द को लेकर भी अप्रासगिक तथा अव्यवस्थित उक्तियॉ बॉधी गई है।

इतना सब होने पर भी जायसी को अलकार तथा काव्य पद्धति का अपने पूर्ववर्ती कवियो का अपेक्षा विशेष ज्ञान था। उनकी सभी कल्पनाओ मे उनका काव्यत्व स्वय यह सिद्ध करता है कि वह उदार हृदय प्रेम की पीर को पहचानने वाले हिन्दी के अप्रतिम ओर अद्वितीय कवि थे।

●

पंचम

मत और सिद्धान्त

कलाकार जब अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति करता है उस समय वह प्रयास करते हुए भी अपने व्यक्तित्व को मूलत. तिरोहित नही कर पाता है स्थूल अथवा सूक्ष्म किसी भी रूप का आधार लेकर जो कुछ भी वह कहता है उसकी पृष्ठ भूमि भी उसके पास ही दिखाई पडती है। इसी पृष्ठभूमि मे आलोचक कलाकार की वैयक्तिक विचार पद्धति, सस्कार, मत तथा सिद्धवन्त को खोजने की चेष्टा करता है यदि आलोचक सजग और तत्वान्वेषी हुआ तब तो ठीक अन्यथा उपनिषद मे वर्णित उस सुन्दर कथा के अन्तर्गत मानव, दानव और देवता की भाति सन्तुष्ट हो जाता है, जिसमे देव दानव और मानव तीनो प्रजापति के पास उपदेश के लिए पहुचे थे। प्रजापति ने सबको एक ही अक्षर 'द' बताया। दानव देवता और मानव तीनो ने ही क्रमश उससे से दमन, दया और दान करने की भावना को ग्रहण किया था।

जायसी मुसलमान थे। सूफी सतो से प्रभावित थे परन्तु आदर्श मानव मे जिन गुणो की अपेक्षा की जाती है उनके प्रति उनकी सर्वोपरि आस्था थी। वे धार्मिक क्षेत्र मे भी उदार थे। विचारो की सकीर्णता उनके पास फटकने नही पाती थी। उनकी रचनाओ मे हिन्दू और मुसलमान दोनो के ही धार्मिक महापुरुषो की चर्चा श्रद्धा के साथ की गई है सूफी साधना के अन्तर्गत प्रेम पद्धति का जो स्वरूप प्रतिष्ठित हुआ है उसी का निर्वाह उनके 'पद्मावत मे दृष्टिगत होता है। लोक स्वीकृत आचार विचार को जायसी ने विनयावनत भाव से स्वीकार किया है।

जिस प्रेम का उल्लेख सस्कृत के ग्रन्थो मे हुआ है उससे और जायसी वर्णित प्रेम मे अन्तर है प्रभु की कल्पना एक प्रिय के रूप मे की गई है भक्त उसका प्रेमी है। परन्तु परमात्मा हमारे प्रेम के निकट नही है इसी भावना पर भक्ति का विकास हुआ है और लोगो ने वत्स और माता के रूप मे भी प्रभु की कल्पना की है। बहु विवाह की पद्धति इसी से निकली हुई मालूम होती है। जायसी ने भी इसी आधार पर इसका समर्थन किया है। प्रभु स्वामी है। स्त्रियो ने भी इसी आधार पर इसका समर्थन किया है। पत्नी शीला है। हमारे समस्त काव्य मे पत्नी पति की अपेक्षा अधिक उद्वेलित रूप मे प्रदर्शित हुई है। सूफी सन्तो ने अनुभव किया कि प्रभु अनन्त सौदर्य का केद्र है। वह अपने सौदर्य की अभिव्यक्ति करना चाहता है। मानव के अन्दर जहॉ जहॉ सौंदर्य है उसका प्रतिबिम्ब भी स्त्री रूप मे प्रस्तुत किया

गया है सूफी सन्तो ने सौदर्य की केद्रीय सत्ता को सौदर्यमयी, लावण्यमयी रमणी के रूप मे देखने की चेष्टा की है। परमात्मारूपी स्त्री की सुन्दरता की कल्पना भी उन्होने दृढता के साथ की है। इनके काव्यो मे साधक पति के रूप मे परमात्मारूपी स्त्री को प्राप्त करने की चेष्टा मे रहता है। और स्त्री भी पति को प्राप्त करने मे प्रयत्नशील रहती है जायसी ने पद्मावत के उत्तरार्ध मे पद्मावती को चिन्तित अवस्था मे चित्रित किया है।

जायसी प्राचीनता के समर्थक है। अनुचित कार्यों की ओर उन्होने अपनी ऑखो की प्रतिभा को मन्द नही होने दिया है परन्तु उनका विरोध सीधे सादे शब्दो मे किया है। उनके विरोध मे अनुचित कार्य करने वालो के प्रति घृणा न होकर कार्य के प्रति उदासीनता स्वीकार करने की भावना को स्थान मिला है आधुनिक युग मे गॉधी जी की भॉति उन्होने भी भ्जम जीम`पद दवज जीम`पददमत (पाप से घृणा करो, पापी से नही) के लक्ष्य को अपने सम्मुख रखा है उपर्युक्त विचारो का समर्थन हमे निम्नलिखित उदाहरण से प्राप्त होता है।

> "राघव पूज जाखिनी, दुइज देखाएसि साझ।
> वेदपथ जेहि नहि चलहि, ते भूलहि बन माझ।
> झूठ बोल थिर रहे न राचा। पडित सोइ वेदमत साचा।
> वेद बचन मुख साच जो कहा, सो जुग जुग अहथिर होई रहा।।"
> "जिन्ह जसमास भखा परावा, तस तिन्हकर लेई और न खावा।"

जायसी सूफी सत थे यह पिछली पक्तियो मे कई बार जोर देकर कहा जा चुका है। अत. यह आवश्यक जान पडता है कि सूफी मत के सबध मे भी थोडा विचार कर लिया जाये। मुसलमानो का वह उदार दल जो परमात्मा की परम प्रियतम के रूप मे उपासना करता है। सूफी कहलाता है। यद्यपि इनका स्पष्ट प्रादुर्भाव मुहम्मद साहेब की मृत्यु के लगभग ३०० वर्षों बाद हुआ परन्तु सर्वप्रथम सूफी मत का आविर्भाव ई सन् ८०० के पूर्व पैलेस्टाइन मे अबुहासिम द्वारा हुआ था। इस्लाम धर्म के मुख्य आधार एकेश्वरवाद को छोडकर सूफियो ने प्रेम के माध्यम से अनन्त की प्राप्ति का प्रयास किया। प्रेम की सरस धारा के लिए कल्पित मूर्ति की आवश्यकता हुआ करती है अतः इन्होने चिन्तन और मनन के द्वारा जगत और जीव को भी ब्रह्म स्वीकार किया। इन लोगो की मान्यताओ में वैष्णव धर्म के अन्तर्गत आने वाली प्रेम साधना का प्रभाव दृष्टिगत होता है। इस्लाम धर्म के अन्तर्गत निराकार खुदा की जो मान्यता है उसको त्यागकर इन लोगो ने भारतीय अद्वैतवाद की स्वीकृत मान्यताओ को स्वीकार किया। वे मानते है कि जो कुछ इस ससार मे दिखलाई पडता है। वह प्रभु की सत्ता के आभास के रूप मे है प्रत्येक पदार्थ मे प्रभु और प्रभु मे सभी पदार्थो का मूल निहित है। हमारी समस्त क्रियाशीलता

प्रेरित हुआ करती है। आत्मा को उन्होने पछी के रूप मे माना है। प्राणी का जन्म होते ही वह पछी की भॉति कैद हो जाता है और मृत्यु के पश्चात उसे स्वच्छन्दता का अनुभव होता है उनका विश्वास है कि मृत्यु के पश्चात विरहिणी आत्मा अपने प्रियतम प्रभु का सान्निध्य प्राप्त करती है। मृत्यु ही मनुष्य को आत्मा द्वारा प्रभु से मिला देती है गॉधी जी ने भी परमात्मा की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है इस सबध मे अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है–

"It is not possible to see god face to face unless you crucify the flesh " (परमात्मा को तब तक रूबरू नही देखा जा सकता जब तक शरीर का परित्याग न किया जाये)

प्रभु से आध्यात्मिक एकता स्थापन मे हमे प्रभु के अनुग्रह की आवश्यकता हुआ करती है प्रभु की कृपा के अभाव मे जड चेतन सभी की क्रियाशक्ति उर्ध्वगामी न होकर पतनोन्मुखी हो जाती है प्रभु के अनुग्रह को सूफियो ने 'फया जान उल्लाह' अथवा 'फजल्लाह' की सज्ञा दी है। सूफीमतावलम्बी सादा जीवन और शुद्ध आचार विचार को अपनाते हुए भगवत प्राप्ति हेतु स्मरण चिन्तन को ही जीवन का मूल मत्र मानते है। (सूफियो के साधना–सोपानो का वर्णन करते हुए श्री भुवनेवर प्रसाद जी मिश्र लिखते हैं "जगत की ओर से मुह फेर कर भगवान के पथ मे चलने की उत्कण्ठा का बीजारोपण जब ह्रदय मे हो जाता है उस समय साधक का नाम तालिब है। इस पथ मे वह प्रवृत्त हो जाता है तो उसे 'मुरीद' कहते है। किसी गुरु के आदेशानुसार जब वह अपने जीवन को प्रभु प्राप्ति मे प्रवाहित कर देता है तब उसका नाम 'सलीक' होता है। सबसे पहले उसे सेवा की दीक्षा मिलती है। सेवा के द्वारा ही प्रेम की प्राप्ति होती है। प्रेम के द्वारा उसे एकाग्रता की प्राप्ति होती है और ससार के सारे राग मोह सदा के लिए जल जाते हैं। कचनरुपी" अन्तःकरण की शुद्धावस्था मे ही ज्ञान उदय हुआ करता है, ज्ञान के उज्वल प्रकाश से साक्षात्कार होता है इसके उपरान्त प्राणी को वस्ल का आनन्दानुभव प्राप्त होता है। यह प्राणी की प्रभु प्राप्ति हेतु साधना का अतिम सोपान है इससे आगे जाने की न तो उसमें क्षमता ही है और प्रभु की प्राप्ति के पश्चात न तो वह आगे जाने की चेष्टा ही करता है। हॉ, मृत्यु के पश्चात् की इसी साधना से अनुबधित अवस्था जो 'फना' के नाम से विश्रुत है और जिसमे सूफी अपने सर्वात्मभाव से प्रभु मे लय कर देते है, का भी उल्लेख विचारको द्वारा गया है।

भारतीय कर्म, उपासना, ज्ञान तथा सिद्धावस्थाओ की भाति सूफी मतावांलम्बी भी साधना की चार अवस्थाये मानते हैं... शरीअत, तरीकत, हकीकत और मार्फत। ये चारो अवस्थाये क्रमशः कर्म, उपासना, ज्ञान, तथा ब्रह्म अवस्था से साम्य रखती हैं शरीअत से विधिनिषेक, का सम्यक् पालन, तरीकत से शुद्धतापूर्वक भगवान का

ध्यान, हकीकत से तत्वदृष्टि सम्पन्नता, मार्फत से कठिन उपवास आदि का अर्थ भी ग्रहण किया जाता है। इनका 'अनहलक' 'अह ब्रह्मास्मि' का ही बोधक है। सूफी साधको ने प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनो ही मार्गों मे "who best bear his mild are, they serve Him best" मे सचित भाव से साम्यता रखते सर्वात्म समर्पण को ही प्रधानता दी है प्रभु के चरणो मे सर्वात्म समर्पण कर उसमे लय होना ही साधना की चरम परिणति मानते है। 'फना' मे अवस्था का वर्णन सूफी सन्त जलालुद्दीन रूमी ने अपनी पुस्तक 'मस्नवी' मे निम्नलिखित शब्दो मे किया है। प्रियतम के द्वार बाहर से किसी ने खटखटाया। भीतर से आवाज आई . कौन है।

मै हू उत्तर था।

भीतर से आवाज आई,.... इस घर मे 'मै' और 'तुम' दो नही रह सकते। द्वार बन्द ही रहे।

प्रेमी निराश होकर लौट गया। वर्ष भर उसने जगल मे एकान्त रहकर तपस्या की, उपवास किया, प्रार्थनाये की। वर्ष समाप्त होने पर प्रेमी पुन· आया और प्रियतम के द्वार खटखटाये।

कौन है। भीतर से आवाज आयी।

तू है, प्रेमी का उत्तर था।

द्वार खुले, प्रेमी और प्रियतम मिले, मिलकर एक हो गये।

इसी सर्वात्म समर्पण की भावना से प्रभावित हो जायसी तथा उनके सामयिक सभी साहित्य सेवियो द्वारा प्रणीत कथाओ का अन्त नायक और नायिका की मृत्यु के साथ हुआ है यद्यपि यह बात आगे चल कर भारतीय साहित्य, जिसमे सुखान्त रचनाओ का बाहुल्य था, के प्रभाव से अन्य कवियो मे नही दृष्टिगत होती।

उपर्युक्त मत और सिद्धान्तो के अतिरिक्त जायसी को जहॉ जो कुछ अच्छा दिखलाई पडा, उसे उन्होने स्वीकार किया है उनकी रचनाओ मे कुरान, वेद, प्रतीकोपासना, अग्नि, जल, वायु आदि के रूप मे भारतीय अद्वैतवाद तथा आदर्श मानव के सिद्धान्तो, का स्थान स्थान पर चित्रण मिलता है उन्होने अपनी रचनाओ मे वीरता, शालीनता एव सत्यता को प्रश्रय दिया है। सामाजिक दृष्टिकोण का जहॉ तक सबध है जायसी अपने युग से प्रभावित थे। पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो का महत्व कम है जायसी की इस भावना का सकेत 'तिरिया भूमि खडग की चेरी, जीत जो खडग होई तेसि केरी।' मे मिलता है। परन्तु इसका यह अर्थ नही कि वे उनका सम्मान नही करते थे। उन्होने सम सामयिकता का आधार छोडकर पुरुष और स्त्री के सासारिक प्रेम को आधार मान कर प्रभु को प्राप्त करने की चेष्टा की थी।

षष्ठ

सूफी और संत कवि

सूफी शब्द की उत्पत्ति अरबी के 'सूफ' शब्द से हुई है सूफ से ऊन का अर्थ ग्रहण किया जाता है प्राचीन समय के सूफी साधक ऊन की कफनी और कनटोप पहनते थे। कुछ विचारको का ऐसा मत है कि सूफी शब्द 'सफ्' से निकला है। अरबी से 'सफ्' का अर्थ पवित्रता का द्योतक है। इसके अतिरिक्त यह भी कहा जाता है कि जब अरब देश के रहने वाले अज्ञानान्धकार मे पडे हुए थे उस समय 'सूफा' नामक एक ऐसी जाति थी जो सासारिक माया मोह से छूटने के लिए प्रयत्नशील थी। इस जाति मे होने वाले संतो को सूफी कहा जाता है।

सूफी काव्य की विशेषताएँ :– सूफी कवियो मे अधिकाश इस्लाम धर्म के अनुयायी थे। अत पुरातन से गृहीत सस्कारो की अभिव्यक्ति को वे अपने से दूर नही कर सके है। यद्यपि इस्लाम धर्म के अनुसार सूफियो की परोक्ष सत्ता को निराकार ही रहना पडा है परन्तु उन्होने अपने उत्कट प्रेम और उदार हृदय के कारण अव्यक्त और परोक्ष सत्ता को बहुत कुछ व्यक्त रूप प्रदान किया। आध्यात्मिक प्रेम से ओतप्रोत 'मजनू' भी काबे को बुतखाना समझने लग गये थे। धार्मिक प्रतिबध ाे तथा परिवर्तित मान्यताओ के कारण सूफियो ने लौकिक प्रेमाख्यानो के माध्यम से ईश्वरोन्मुख प्रेम की अभिव्यजना की है। प्राय सभी सूफी कवियो मे आध्यात्मिक प्रेमाभिव्यजन के उपयुक्त कथानक सृजन की क्षमता पाई जाती है कल्पना और ऐतिहासिकता का समन्वय जिस अद्भुत ढग से सूफी कवियो ने किया है वह अन्यत्र बहुत कम दिखलाई देता है। कल्पना और ऐतिहासिकता का सामजस्य कर लौकिक प्रेमाख्यानो द्वारा ईश्वरोन्मुख प्रेम की अभिव्यजना जिस स्तुत्य ढग से की है उससे इस युग के कवियो की प्रतिभा का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। जायसी का 'पद्मावत' इतिहास और कल्पना के समन्वय का एक उत्तम उदाहरण है। सूफी कवियो के अधिकाश आख्यान हिन्दू समाज मे घटित होने वाली घटनाओ से ही गृहीत हुए हैं। मुसलमान होते हुए भी इन्होने हिन्दू समाज और जीवन के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की है। इनकी रचनाओ मे भारतीय सर्ग बद्ध शैली का अभाव है इन्होने फारसी मसनवी शैली पर ही कथाक्रम को विकसित किया है इनकी रचनाओ मे अल्ला की वन्दना, मुहम्मद साहब की स्तुति, तत्कालीन शासक की प्रशसा कथा के पूर्व समान रूप से प्राप्त होती है। इन सभी प्रेमाख्यानो की भाषा

भी प्राय एक जैसी ही है। तत्कालीन ग्राम्य अवधी का अव्यक्त रूप इनकी रचनाओ मे मिलता है इन कवियो का विचरण क्षेत्र भी मुख्यत अवध प्रान्त ही रहा है छन्दो के प्रयोग मे भी कवियो मे समानता है। इस युग के सभी कवियो की रचनाये दोहा चौपाई मे मिलती है। हम यह पहले ही कह आये हैं कि इस युग मे प्रेम कथाओ की चर्चा करने वाले सभी कवि मुसलमान थे। मुसलमानो मे मूर्ति विद्वेष की भावना तथा सूफी मत की विलक्षण अभिव्यक्ति के कारण इस प्रकार की शैली हिन्दुओ द्वारा विशेष रूप से नही अपनाई गई। कुछ लोगो ने आगे चलकर प्रयास भी किया है परन्तु उनमे इस युग के कवियो जैसी बात नही आ पाई है। इसका दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि राम और कृष्ण को लेकर सगुण कल्पना के आधार पर भारतीय भावनाओ से ओत प्रोत काव्य का शुभारम्भ हो चला था। अस्तु भावो मे उदार होते हुए भी परकीय मसनवी शैली को हिन्दू कवियो ने नही अपनाया।

प्राय सभी सूफी कवियो ने नायिका की अपेक्षा नायक को ही उद्वेलित रूप मे प्रस्तुत किया है आगे चलकर रति का रूप उभयात्मक कर दिया गया है सम्भवत प्रेम के उभयात्मक रूप के चित्रण मे सूफी कवियो पर भारतीय प्रेम शैली का प्रभाव पडा है जिसमे जीवात्मा के रूप मे नायिका ही ब्रह्म रूपी पुरुष के लिए व्याकुल रहती है।

प्रेम अन्तर्जगत की वस्तु है परन्तु इसकी कल्पना लोकव्यवहार मे भी की गई है Love is blind वाले स्तर पर न जाने देने के लिए समाजशास्त्रियो ने कर्तव्य और बुद्धि के द्वारा प्रेम पर नियत्रण करने का प्रयास किया है तुलसी के राम ओर सीता का मर्यादित प्रेम मूलत भारतीय आदर्श के सदा अनुकूल है। नायिका मे सतीत्व एव दृढ प्रेम की अनन्य प्रतिष्ठा करके जायसी और कुतबन आदि सूफी कवियो ने परम्परा से चली आयी भारतीय नारी की आत्मा को वस्तुत मूर्त किया है सूफी कवियो ने प्रेम का वर्णन करते समय अवाछित दृश्यो को यथासाध्य बनाया है। अस्तु प्रेममार्गी कवियो द्वारा चित्रित प्रेम वस्तुत भारतीय परम्परा की आदर्शोन्मुख पृष्ठभूमि के अनुकूल ही हुआ है प्रतीक पद्धति को छोडकर अन्य अगाय प्रवृत्तियो मे भारतीयता के दर्शन होते है आत्मा और परमात्मा का एकीकरण 'फना' मे होने के कारण कथाओ का अत विषाद मे हुआ है।

तुलना ईष्या की प्रथम सीढी है परन्तु युग–प्रवृति, जिसमे तुलनात्मक अध्ययन को महत्व प्रदान किया जा रहा है, उसे नही स्वीकार करती है। वह तुलना के अन्तर्गत विवेचना का आभास पाता है उपर्युक्त दोनो विचारो को स्वीकार कर विद्वानो द्वारा स्वीकृत सूफी और सत कवियो की प्रवृत्तियो का तुलनात्मक सकेत करना ही उचित समझता हू।

जायसी तथा उनके समकालीन कवियो मे कबीर की ही भॉति साधारण

रहस्यवाद के स्थल स्पष्ट मिलते हैं।

"जो ब्राह्माण्ड सो पिण्ड है हेरे अत न काहि" ऐसा विचार व्यक्त करते हुए जायसी ने जिन जिन स्थानो पर दुर्गम गढ की चर्चा की है वही प्राय इस प्रकार के सकेत दे दिये है।

"गढ तस बाँक जैस तोरि काया।
पुरुष देख वाही की छाया।।"

सत कवियो मे भारतीयो के प्रचलित मतवादो की उखाड–पछाड की वृत्ति के सकेत मिलते हैं। परन्तु सूफियो ने उन्ही मतवादो का आदरपूर्वक स्मरण किया है। परम्परा से प्रतिष्ठित हठयोग की समाधि पर कबीर–'साधो सहज समाधि भली का' नारा लगाते हैं तथा दूसरी ओर 'ऑख न मूदो' आदि कहकर हठयोग का निषेध करते हैं। परन्तु सूफियो मे इस प्रकार की चर्चा कही नही मिलती। आचार्य शुक्ल जी ने सूफी और सत कवियो का उल्लेख करते हुए लिखा है–

"कबीर तथा अन्य सतो ने अपनी झाड फटकार तथा खण्डन मण्डन की प्रवृत्ति से हिन्दू मुसलमानो के कट्टर भेदो को दूर करने का जो प्रयत्न किया वह प्राय लोगो को चिढाने वाला ही हुआ, हृदय का स्पर्श करने वाला नही। मनुष्य और मनुष्य के बीच रामात्माक सबंध की अभिव्यक्ति सागोपाग रूप से इन सत कवियो द्वारा नही हो सकी है। कुतबन, जायसी आदि की प्रेम कहानियो ने प्रेम के शुद्ध मार्ग को दिखाते हुए उन सामान्य जीवन की दशाओ को प्रत्यक्ष कर दिया जिनका मनुष्य के हृदय पर एकसा प्रभाव दिखाई पडता है। कबीर आदि ने भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास मात्र दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता अभी शेष थी। यह जायसी आदि कवियो के द्वारा पूर्ण हो सकी।'

कबीर तथा उनके समकालीन कवियो मे रहस्यानुभूति की जो कुछ भी अभिव्यक्ति हुई उससे निराकार ब्रह्म की सत्ता का सकेत प्राप्त होता है। फुटकर पदो मे उसका सविस्तार वर्णन सम्भव नही था अत कुछेक सबधो की सम्भावना देते हुए भावो की अभिव्यक्ति करना उनका लक्ष्य रहा है और इसी कारण से सतकाव्यो मे निराकार ब्रह्म का विस्तृत विवरण जायसी, कुतबन आदि की प्रबध –रचनाओ मे की अपेक्षा कम प्राप्त होता है। कबीर आदि सतो का रहस्यवाद प्रमुख रूप से दार्शनिक ही रहा है उसमे सूफी कवियो की अपेक्षा माधुर्य भावना की परम्परा का अभाव खटकता है। वेदान्त के विभिन्न वादो तथा अन्य दार्शनिक शैलियो का अनुसरण करते हुए कबीर आदि ने रहस्योद्वार व्यक्त किया है कि डा. श्यामसुन्दर दास जी ने भी इस सबध मे अपना विचार व्यक्त किया है कि 'कविता की दृष्टि से कबीर का रहस्यवाद ओज और प्रकाशपूर्ण और सूफियो का माधुर्य और रसपूर्ण है।"

कबीर निर्गुणोपासक थे, महात्मा थे। उनके द्वारा यद्यपि साहित्य मे समाज

सुधार तथा रूढियो के विरोध का वे समाजोपयोगी तत्व समाविष्ट हुआ परन्तु उनकी भाषा मे एकरूपता के दर्शन नही होत हैं। यही कारण है कि आलोचक सत कवियो की अपेक्षा सूफी दर्शन की भाषा अधिक परिमार्जित तथा माधुर्यरस से ओत–प्रोत मानते है। उनका ऐसा मत है कि सूफी कवियो की अवधी आदर्श मौलिक अवधी है।

उपर्युक्त विवेचन का यह अर्थ कदापि नही है कि सत–साहित्य सूफी–साहित्य के समक्ष नितान्त हेय है। सत कवि और सूफी कवियो की परिस्थितियॉ भिन्न थी। उस युग मे उसी प्रकार के बचनामृत जिससे कटुता दूर हो और धर्म के नाम पर पापाचार करने वालो को मुहतोड उत्तर भी प्राप्त होता रहे की आवश्यकता थी। दूसरी बात जो तुलनात्मक विवेचन करते समय अवश्य ध्यान रखना चाहिए वह है कबीर तथा उनके समसामयिक सतकवियो की निरक्षरता। वे तत्वान्वेषी थे। कथित भाषा पर जो अधिकार सत कवियो को है वह आज तक किसी भी कवि द्वारा अपनाया ही नही जा सका है। कबीर और जायसी के युग की परिस्थितियॉ भिन्न है जिनके कारण अतर उपस्थिति होना अनिवार्य है। अपने–अपने युग मे कबीर और जायसी ने जो कुछ लिखा वह समाज और साहित्य दोनो के लिए उपादेय रहा है। सूफियो की अवधी मे तुलसी की सी कोमलता ओर भावव्यजना का रूप प्राप्त न होने पर उनके साहित्य का प्रभाव क्षीण सा हो गया। जायसी आदि सूफी कवियो का जितना प्रभाव बुद्धिजीवियो पर पडता है उतना साधारण मानव पर नही जब तक वह उसमे रस लेने की इच्छा से उसका रसास्वादन न करे। यही कारण है कि कबीर के पदो को हम प्रायः रेडियो तथा रेलयात्रा के समय सूर लोगो से सुना करते हैं उनका सूफी कवियो की अपेक्षा व्यापक प्रभाव है।

वीर काल मे वीरोल्लासमय कविता का सृजन हुआ और सत कवियो ने प्रेम और वैराग्य को साहित्यिक विषय के रूप मे प्रस्तुत किया परन्तु प्रेमाख्यानक कवियो ने रति, करुणा, उत्साह आदि की विस्तृत भूमि पर काव्य रचना की। काव्य की अपेक्षाकृत भावभूमि को प्रस्तुत करने का कार्य सम्पन्न हुआ। मुक्तक गीतो मे समाज की सागोपाग भावना और मानव जीवन के सूक्ष्म मानसिक चित्र सम्पूर्ण पृष्ठभूमि सहित चित्रित नही हो सकते थे। प्रेमाख्यानक कवियो ने अपने प्रबध काव्यो द्वारा मानवीय भावो का सार्वदेशिक एव सार्वभौमिक चित्र प्रस्तुत करने की चेष्टा की। सूफी कवियो मे से अनेक ने काव्य के द्वारा अपने व्यक्तित्व को अमर बनाने की अभिलाषा व्यक्त की है परन्तु सत कवि आत्मज्ञानी थे, तत्वान्वेषी थे अत उनके काव्य से जनकल्याणकारिणी भावना का प्रस्फुटन जिस रूप मे हुआ है, वह स्तुत्य है।

●

सप्तम

जायसी का रहस्यवाद

रहस्यवाद की पृष्ठभूमि के सबध मे कबीर की रहस्यानुभूति नामक अध्याय के अतर्गत सूक्ष्म रूप मे विचार किया जा चुका है। उन्ही बातो को दुहराकर पुस्तक का आकार बढाना उपयुक्त नही समझता हूँ। अतएव यहॉ पर सक्षेप मे दो एक बाते कहने के पश्चात् जायसी के रहस्यवाद पर विचार करना ही उचित मानता हूँ।

मनुष्य सौदर्यप्रिय प्राणी है। वह प्रकृति मे अपने हृदय की छाया का दर्शन करता है और अपने हृदय की भावनाओ का सादृश्य प्रकृति मे भी ढूढता है। 'हिन्दी साहित्य और साहित्यकार' मे यशस्वी लेखक श्री सुधाकर जी ने रहस्यवाद का शब्दात्मक रूप उपस्थित करते हुए लिखा है– "प्रकृति जिस अमर सौदर्य की छायामात्र है, उसके प्राणतत्व के रहस्य का भी उद्‌घाटन कवि करने लगे तथा अपने हृदय की भावनाओ मे उस रहस्य–सौन्दर्य का तादात्म्य स्थापित करने लगे। इसी संकल्पनात्मक अनुभूति की काव्यमयी अभिव्यक्ति को रहस्यवाद की सज्ञा दी गयी।

भिन्न–भिन्न युगो मे रहस्यवाद की प्रवृत्तियॉ भी, यही कारण है कि परिवर्तित रूप लिए उपस्थित हुई हैं कबीर जायसी और आधुनिक रहस्यवाद की प्रवृत्तियो मे एकरुपता के दर्शन नही होते है।

सूफी कवियो की प्रेमाभिव्यक्ति ईश्वरोन्मुख है प्रकृति मे ईश्वर की सत्ता का अस्तित्व स्वीकार करने के साथ–साथ वे उसमे समस्त सृष्टि के सौन्दर्य स्रष्टा की छाया भी देखते हैं।

"कीन्हेसि सात समुन्द अपारा। कीन्हेसि मेरू, खिखिंद पहारा।

कीन्हेसि नदीनार, औ झरना। कीन्हेसि मगर मच्छ बहु बरना।।"

प्रकृति मे–प्रियतम के रूप मे ईश्वरत्व का दर्शन करने की क्षमता इन सूफी सतो में तीब्रतम रूप से पायी जाती है वे उसमे अपने प्रियतम की मूक प्रतिबिम्बित छाया मात्र न देखकर अपनी रागात्मक वृत्ति का प्रतिस्पन्दित स्वर सुनते हैं। जायसी के 'पद्‌मावत' में लौकिक कहानी का आधार लेकर इश्वरोन्मुख प्रेम की अभिव्यजना हुई है और इस ईश्वरोन्मुख प्रेम को सजीव साकार रूप देने के लिए मानव के मनोभावो का आश्रय ग्रहण किया गया है।

जायसी की रहस्यानुभूति के दो रूप है। प्रथम मे तो ईश्वर निराकार है, निर्गुण है अतः अवर्णनीय है आदि बातो की चर्चा मिलती है। जैसे–

'अलख अरूप अवरन सो कर्ता। वह सब सो, सब ओहि सो बर्ता।
परगट गुपुत सो सरब विआपी। धरमी चीन्ह, न चीन्हे पापी।।
ना ओहि पूत न पिता न माता। ना ओहि कुटुब न कोई सगनाता।।
जना न काहु, न कोइ ओहि जना। जहं लगिसबताकरसिरजना।।"

अथवा

"मूंक करोति वाचालं पंगु लंघयते गिरिम्
यत्कृपा तमहंवन्दे परमानन्द माधवम्"

की भाति वे भी ईश्वर के अव्यक्त रूप की प्रतिष्ठा करते हैं।

"जीउ नाहि, पै जिये गुसाई। कर नाहीं, पै करै सबाई।।
जीभ नाहिं पै सब बिछु बोला। तन नाही सब ठाहर डोला।।
नयन नाहिं, पै सब किछुदेखा। कौन भॉति अस जाह विसेखा।।
है नाहीं कोई ताकर रूपा। ना ओहि सन कोइ आहि अनूपा।।
न होहि ठाऊँ, न ओहि बिनु ठाऊँ। रूप रेख बिनु निरमल नाऊँ।।

जायसी की रहस्यानुभूति का प्रथम रूप निर्गुण संत मत की पृष्ठभूमि पर ही विकसित हुआ है उसमे व्यापक दृष्टिकोण के साथ रहस्यमयी सत्ता का उद्घाटन करने की चेष्टा की गयी है मधुरता और रमणीयता से ओतप्रोत भावव्यजना के द्वारा अमूर्त सत्ता का जो वर्णन जायसी ने किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है–

"बहुत जोति जोति ओहि भई।
रवि, ससि, नखत दिपहिं ओहि जोती। रतन पदारथ, मानिकमोती।
जहँ तहँ विंहसि सुभावहि हँषी। तहँ तहँ छिटक जोति परगसी।
नयन जो देखा कंवल भा निरमल नीर शरीर।
हंसत जो देखा हंस भा, दसन जोति नग हीर।"

जायसी ने प्रकृति को आधार बनाकर, रहस्यवाद के अन्तर्गत आने वाली जिस कोटि की भावाभिव्यक्ति की है उसका दर्शन अन्यत्र दुर्लभ है। इस स्थल पर आचार्य शुक्ल जी के विचार जो इस सबध मे समीचीन है उद्धृत करना उपयुक्त समझता हूँ।

"प्रकृति के बीच दिखाई देने वाली सारी दीप्ति उसी से है, इस बात का आभास पद्मावती के प्रति रत्सेन के ये वाक्य दे रहे हैं–

अनु धनि ! तू निसिअर निसि माहाँ। हौं दिनकर जेहि के तूछॉहा।

चॉदहि कहा जोति औ करा। सुरुज के जोति चाँद निरमरा।।''

रहस्य की खोज मे जायसी दत्तचित्त से दीख पडते है सभी विधि विधानो को नमन करती हुई उनकी तत्वान्वेषी वृत्ति मे मानवी भावनाओ का प्रस्फुटन करती दिखाई पडती है। उदाहरणार्थ–

''पिय हिरदय महँ भेट न होई। को रे मिलाव, कहौं केहि रोई।''

परन्तु प्रभु का सामीप्य प्राप्त होने पर जिस आनन्द की प्राप्ति होती है उसकी व्यजना जायसी ने निम्नलिखित पक्तियो मे किस सुन्दर ढग से की है। इसका अनुभव पाठक स्वयमेव करे।

''देखि मानसुर रूप सोहावा। हिय–हुलास पुरइनि होइ लावा।।
भा अधियार रैन मसि–छूटी। भा भिनसार किरिन रवि फूटी।।
कँवल बिगस तरु विहँसी देही। भँवर दसन होई के रस लेही।।''

उस जगत नियता का सामीप्य प्राप्त होने पर मानस रूपी मानसरोवर मे उल्लास रूपी पुरइहिन (जिसमे कमल खिलते है) चारो ओर फैल गयी है साक्षात्कार से अधकार रूपी अज्ञान नष्ट हो गया है ज्ञानरूपी प्रभाव मे मानस का कमल प्रफुल्लित हो उठा है और उन पर भौरे दिखाई दे रहे है अत और बाह्य जगत का सामजस्य जिस ढग से उपुर्यक्त पक्तियो मे व्यक्त हुआ है वह अनुपमेय है।

आचार्य शुक्ल जी ने जायसी के रहस्यवाद को अद्वैतवादी रहस्यवाद के अन्तर्गत माना है इसके समर्थन मे उन्होने बडी विषद व्याख्या करते हुए जायसी के पद्मावत से उद्धरण उद्धृत किये है। अगली पक्तियो मे जायसी के अद्वैतवादी रहस्यवाद से सबधित उनके विचार उन्ही के शब्दो मे रखने की चेष्टा कर रहा हूँ।

पृथ्वी और स्वर्ग, जीव और ईश्वर, दोनो एक थे, बीच बीच मे न जाने किसने इतना भेद डाल दिया है।

''धरती सरब मिले हुत दोऊ। केह निनार कै दीन्ह विछोऊ।।

जो इस पृथ्वी और स्वर्ग के वियोग–तत्व को समझेगा और उक्त वियोग मे पूर्ण रूप से सम्मिलित होगा उसी का वियोग सारी सृष्टि मे इस प्रकार फैला दिखाई देगा–

सूरुज बूडि उठा होइ ताता। और मजीठ टेसू बन राता।
भा बसंत राती बनसपती। और राते सब जोगी जती।।
भूमि जो भीजि भएउ सब गेरू। औ राते सब पखि पखेरू।।
राती सती, अगिनि सब काया। गगन मेघ राते तेहि छाया।।

साय प्रभात न जाने कितने लोग मेघ खडो को रक्त वर्ण होते देखते है पर किस अनुराग से वे लाल है इसे जायसी ऐसे रहस्यदर्शी भावुक ही समझते है। प्रकृति के सारे महाभूत उस अपरधाम तक पहुँचने का बराबर प्रयत्न करते रहते हे पर साधना पूरी हुए बिना पहुँचना असम्भव है।

"धाइ जो बाजा के मन साधा। मारा चक्र भएउ दुई आधा।।
चाद सुरूज और नखत तराई। तेहि उर अन्तरिख फिरहि सबाई।।
पवन जाइ तहँ पहुँचे चहा। मारा तेस लोटि भुइ रहा।
अगिनि उठी जरि बुझा निआना। धुआँ उठा उठि बीच बिलाना।
पानि उठा, उठि जाइ न छुआ। बहुरा रोइ आई मुँह चूआ।"

जायसी की रहस्यानुभूति का प्रथम रूप जो अपने मे पूर्ण है, लौकिक कथा के माध्यम से ईश्वरोन्मुख रहस्यो का अवगुठन खोलने मे सहायक हुआ है।

जायसी विवेकवान प्राणी थे। अपने पूर्ववर्ती सन्तो की रहस्यमयी अभिव्यक्ति, जिसमे निर्गुण निराकार एव अव्यक्त के रहस्यो की चर्चा की गई थी, का प्रभाव भी देखा था। सतो की रहस्यानुभूति से जन साधारण आकर्षित नही हुआ था वह सकेत रूप मे दार्शनिक पृष्ठिभूमि पर टिका होने के कारण पाठको के आभ्यतर को झकृत करने मे अक्षम सा हो रहा था। अत प्रेम का सम्यक् निर्वाह लिए हुए कथानक की सृष्टि कर उन्होने रहस्यवाद को जनता जनार्दन की रुचि स्तर पर लाकर खडा कर दिया।

जायसी की रहस्यानुभूति का दूसरा रूप, जिसमे लोक रजक रूप का भी निर्वाह हुआ है अत्यन्त सरस है उन्होने पद्मावत के अत मे उसकी लौकिक पृष्ठभूमि के अतिरिक्त रहस्यमयी पृष्ठभूमि को ग्रहण करने के लिए अनुरोध भी किया है पाठक जब यह पढता है—

"तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिघल, बुद्धि पदमिनिचीन्हा।
गुरू सुआ जेई पंथ देखावा। बिनुगुरू जगत को निरगुन पावा।"
नागमती यह दुनिया—धधा। बॉधा सोई न एहि चित बचा।
राघव दूत सोई सैतानू। माया अलाउद्दीन सुलतानू।
प्रेम—कथा एहि भॉति विचारहु। बूझि लेहु जौ बूझै पारहु।।

और अपनी बुद्धि के आधार से उपर्युक्त चौपाइयो मे वर्णीत तथ्य को कथानक के साथ बैठाने की चेष्टा करता है उस समय कथानक का दोहरे रूप मे सागोपाग निर्वाह देखकर वह आश्चर्य मे पड जाता है। जायसी ने प्रेमोन्मुख कथा

के द्वारा आन्तरिक जगत की पृष्ठभूमि का जो सम्यक चित्र उपस्थित किया वह कुतबन और मझन की रचनाओ मे भी हो चुका था, परन्तु जो स्वरूप और प्राण प्रतिष्ठा जायसी के पद्मावत मे व्यक्त हुई है वह उनके पूर्ववर्ती तथा बाद के कवियो मे ढूढने पर भी प्राप्त नही होती है जायसी ने पद्मावत की कथा को रूपक मात्र ही स्वीकार करने का निवेदन करने का निवेदन किया हैं उनके सभी वर्णन प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष की ओर सकेत एव उसका रहस्योद्घाटन करते हुए चलते है उन्होने लौकिक रूप लिए हुए प्रेमी के कष्टो और त्याग आदि का वर्णन इस ढग से किया है जिससे साधक की उर्ध्वगामी यात्रा के समय का विधिवत चित्र उपस्थित हो जाता है। रतन सेन और पद्मावती के माध्यम से साधक और ब्रह्म के मिलन और विरह के उद्भावना जनित दृश्यो का जो शब्द चित्र जायसी ने दिया है वह हृदय स्पर्शी होने के साथ–साथ प्रभावोत्पादक भी हैं बाबू श्यामसुन्दर दास जी जायसी के रहस्यवाद को ही वास्तविक रहस्यवाद मानते हैं जायसी की रहस्यानुभूति प्रारभ मे अर्न्तमुखी होने के पश्चात बर्हिमुखी रूप स्वीकार करती हुई प्रतिलक्षित होती है।

उपर्युक्त सक्षिप्त विवेचन के पश्चात् यदि स्वीकार किया जाये कि जायसी की रहस्यानुभूति अन्तर को आत्मसात् कर पाठक की रागात्मक वृत्ति को झकृत करने मे सफल हुई है तो अनुपयुक्त नही होगा।

अष्टम

प्रबंध–काव्य के रूप में पद्मावत

प्रबन्ध काब्य के रूप मे पद्मावत पर विचार करने के पूर्व प्रबन्धकाव्य की मान्यताओ पर दृष्टिपात करना अत्यन्त आवश्यक है क्योकि मान्याताओ के अभाव मे विचार तन्तुनियन्त्रित न होकर उच्छखलता धारण करने लगते हैं और ऐसे वातावरण मे जो कुछ भी कहा जाता है वह विषय की परिधि के बाहर भीतर ऑख मिचौनी सी क्रिया की सृष्टि करता है।

प्रबन्ध – काव्य मे मानव जीवन के विभिन्न परन्तु सभी महत्वपूर्ण स्थलो का चित्रण हुआ करता है। कथा कम का विकास शनै – शनैः होता चलता आलोचको ने विकास कम के दो रूप स्वीकार किये है। पहले रूप मे कथाकार कथाक्रम को स्वाभाविक गति पर छोडकर स्थायी भावो की व्यजना को सॅवारता चलता है। स्वाभाविक गति से तात्पर्य यह है कि तत्कालीन समाज मे यदि कथा के अतर्गत आये हुए चरित्रो की उद्भावना होती है और समाज के थपेडे तथा युग परिस्थितियॉ उसे किस ओर ले जाती है। वस्तुत. हम इसे यथार्थ का पर्यायवाची रूप तो स्वीकार नही कर सकते है। परन्तु इस प्रकार की स्वाभाविक गति मे यथार्थता मे आशिक दर्शन अवश्य प्राप्त होते है। विकास क्रम का दूसरा रूप वह है जिसमे कथाकार अच्छे और बुरे कर्मो के फल की नियताप्ति कराता हुआ आदर्शोन्मुख गुणो से युक्त पुरुष की अपने प्रतिद्वन्द्वी पर विजय दिखाता है इस प्रकार के कथाक्रम का विकास पूर्व नियोजन घेरे के अन्दर होता है जिसमे कथाकार का लक्ष्य मुख्यत· इतिवृत्तात्मकता का सम्बल ग्रहण कर मजिल पर पहुॅचना होता है। जीवन मे अनेक प्रकार के रगो का समवेश निहित रहता है यदि कथाकार उन आकर्षक रगो का अवगाहन करने के पश्चात् उनकी अभिव्यक्ति नही करता है तो वह सफल कलाकार नही कहा जाएगा।

जायसी के पद्मावत मे रत्नसेन और पद्मावती के जीवन की उन समस्त प्रासगिक घटनाओ का वर्णन हुआ है जिससे कथाक्रम को गति प्राप्त होती हैं जायसी के पद्मावत का विकास स्वाभाविक गति पर हुआ है अन्यथा "राघव दूत सोई सैतानू", का बखान करने वाला उसके दुष्कर्मो जनित अत का भी वर्णन अवश्य करता। पात्रो के कर्मो का शुभाशुभ परिणाम दिखाना भी जायसी का उद्देश्य कभी

भी नही रहा। ससार की गति को उन्होने जिस रूप मे देखा था उसी रूप मे उसकी अवतारणा उन्होने पद्मावत के अन्तर्गत की है। एक बात जो और ध्यान देने की है वह है उनका कथानक। यह हम पहले ही कह आये है कि उनका कथानक मिश्रित कथानक हैं उसमे कल्पना और ऐतिहासिकता दोनो का समन्वय निहित है। अत· कथाक्रम का विकास यद्यपि स्वाभाविक गति से हुआ है परन्तु उसका मार्ग इतिहास द्वारा पद्मावत के अनेक वर्षों पूर्व ही बन चुका था। ऐतिहासिकता के बन्धन को स्वीकार कर कि कवि–अपेक्षित कल्पना का समन्वय करते हुए जायसी ने कथा का विकास स्वभावित गति पर ही किया है और वह कथाकार की क्षमता है कि उपर्युक्त तीनो का सगम प्रेम की परिपुष्टि मे सहायक होता है। जायसी का वर्णन इतिहास का बधन स्वीकार करता है परन्तु उनके मन मे सद्‌गुणो के प्रति आस्था थी और वे उदार थे अत अपनी वैयक्तिक रुचि को वे कथा के अन्तगर्त तिरोहित नही कर सके हैं उनके वर्णन मे सद्‌गुणो की प्रशसा के जो स्थल आये है उनमे उनकी आत्मा का स्वर प्रतिध्वनित हो उठा है।

प्रबध काव्य मे कथा क्रम सुसयत और प्रवाहपूर्ण होना चाहिए। पाठक को पढते समय यह अनुभव न होने पावे कि कथाक्रम टूटा हुआ तथा अस्वाभाविक है अन्यथा कथा का सौन्दर्य कृति के महत्व को भी साथ मे लेकर समाप्त हो जाता है। जायसी ने पद्मावत मे इस ओर विशेष ध्यान दिया है ५७ सर्गों मे कथा का विस्तार है अनेक पात्र हैं मुख्य पात्रो एव घटनाओ की पृष्ठभूमि भी ऐतिहासिक है। अपनी वैयक्तिक रुचि तथा सिद्धान्तो का समावेश भी करने की लालसा है सागोपाग रूपक का निर्वाह भी करना है और यह सब कुछ जायसी द्वारा जायसी के पद्मावत मे हुआ है पद्मावत को पढने पर ऐसा मालूम होता है कि जिस रूप मे जायसी का पद्मावत है वह पुनरुक्ति के दोष को ध्यान से हटा देने पर सर्वांग सुन्दर है। प्रबध काव्य मे एकरसता का ढूढना अनौचित्यपूर्ण है क्योकि उसमे जीवन के विभिन्न अगो का चित्रण हुआ करता है। जो स्थल मर्मस्पर्शी होते है अथवा जिनमे लेखक की वैयक्तिक अनुभूति के साथ कुछ विशेष राग हुआ करता है वे अधिक मुखरित हो उठते है। अत प्रबध काव्य का अपेक्षित गुण, जिसमे इतिवृत्तात्मकता के साथ रसो का परिपाक भी होना आवश्यक है, को दृष्टि मे रखते हुए जब हम पद्मावत का अवलोकन करते है तो हमे आत्मसन्तोष होता है। और हम यह अनुभव करते है कि कथाकार ने इस दृष्टिकोण का भी समुचित आदर किया है। कथानक मे इतिवृत्तात्मकता है परन्तु वह गौण है। भावो की व्यजना, जानकरी का बाहुल्य आदि मे कथा स्वय गतिवान हो उठी है।

उदाहरणार्थ–

चितउरगढ का एक बनिजारा। सिघल दीप जला बैपारा।
बाम्हन हुत एक निपट भिखारी। सो पुनि चला चलत बैपारी।
ऋन काहू सन लीन्हेसि काढी। मकु तह गए होइ किछु बाढी।
मारग कठिन बहुत दुःख भएऊ। लाघि समुद्र दीप ओहि गएऊ।
देखि हाट किछु सूझ न ओरा। सबै बहुत, किछु दीख न थोरा।
पै सुठि ऊँच बनजि तहँ केरा। धनी पाव निधनी मुख हेरा।
लाख करोरिन्ह बस्तु बिकाई, सहसन केरि न कोऊ ओनाई।

उपर्युक्त चौपाइयो का प्रारम्भ चित्तौडगढ के एक व्यापारी के साथ एक दरिद्र ब्राह्मण का उधार लेकर व्यापार की इच्छा से सिघल द्वीप जाने से होता है। सात चौपाइयो मे चित्तउरगढ के व्यापारियो का रुपये की व्यवस्था के पश्चात मार्ग जनित कष्टो को उठाकर सिघल द्वीप जाने और बाजार वर्णन तथा बाजार मे क्रय विक्रय हेतु उपस्थित होने की क्रिया का वर्णन हुआ है। वर्णन मे गति और भावो का अवगुठन शनैः खुलता हुआ सा मालूम होता है। भावो की अभिव्यजना परिस्थिति का चित्रण उपस्थित करने मे सहायक हुई है यही कारण है कि पाठक कवि की कथा के साथ–साथ चलने की लालसा को एकाएक नही छोड पाता है।

आचार्य शुक्ल जी ने प्रबध की रसात्मकता की चर्चा बडे मार्मिक शब्दो मे की है। स्वाभाविकता की रक्षा हेतु उनके विचार उन्ही के शब्दो मे उपस्थित करना उचित समझता हूँ।

"जिनके प्रभाव से सारी कथा मे रसात्मकता आ जाती है वे मनुष्य जीवन के मर्मस्पर्शी स्थल है जो कथा प्रवाह के बीच–बीच मे आते रहते है यह समझिए कि काव्य मे कथावस्तु की गति इन्ही स्थलो तक पहुचने के लिए होती है। पद्मावत मे ऐसे स्थल बहुत से है जैसे, मायके मे कुमारियो की स्वच्छन्द क्रीडा, रत्नसेन के प्रस्थान पर नागमती आदि का शोक, प्रेममार्ग के कष्ट, रत्नसेन को सूली की व्यवस्था, उस दड के सवाद से विप्रलभ दशा मे पद्मावती की करुण सहानुभूति, रत्नसेन और पद्मावती का सयोग, सिहल से लौटते समय की सामुद्रिक घटना से दोनो की विह्वल स्थिति, नागमती की विरह दशा और वियोग सदेश को पाकर रत्नेसन की स्वाभाविक प्रणय–स्मृति, अलाउद्दीन के सदेसे पर रत्नसेन का गौरवपूर्ण रोष और युद्धोत्साह, गोरा–बादल की स्वामिभक्ति ओर क्षात्रतेज से भरी प्रतिज्ञा, अपनी सजलनेत्रा और भोली भाली नवागता बधू की ओर पीठ फेर बादल का युद्ध के लिए प्रस्थान, देवपाल की दूती के आने पर पद्मावती द्वारा सतीत्व–गौरव की अपूर्व व्यजना, पद्मावती और नागमती का उत्साहपूर्ण सहगमन, चित्तौर की दशा इत्यादि। इसमे से पॉच स्थल तो बहुत ही अगाध और गम्भीर हैं। नागमती वियोग, गोरा बादल प्रतिज्ञा, कुवर बादल का घर से निकल कर युद्ध के

लिए प्रस्थान, दूती के निकट पद्मावती द्वारा सतीत्व गौरव की व्यजना हैं और सहगमन ये पाचो प्रसग ग्रथ के उत्तरार्द्ध मे है। पूर्वार्द्ध मे तो प्रेम ही प्रेम है, मानव जीवन और उदात्त वृत्तियो का जो कुछ भी समावेश है वह उत्तरार्द्ध मे है।" आचार्य जी ने तत्वान्वेषी वृत्ति के आधार पर मार्मिक स्थलो की जो सूची प्रस्तुत की है उससे यह स्पष्ट है कि जायसी ने सबके साथ न्याय कर अद्भुत प्रबधपटुता को प्रदर्शित किया है।

प्रबन्ध काव्य का एक और विशिष्ट गुण है सबध निर्वाह। कथा–क्रम कही पर खडित नही है। एक प्रसंग अपने मे पूर्ण होते हुए भी दूसरे प्रसग के लिए आधार का कार्य देता है प्रसगो की पूर्णता को स्वीकार करते हुए शुक्ल जी ने लिखा है कि "जायसी मे विराम अवश्य है जो कही–कही अनावश्यक है पर विवरण का लोभ नही है जिससे प्रवाह खडित होता है।"

सबध निर्वाह पर विचार करते समय हमे मुख्यतया यह देखना चाहिए कि आधिकारिक कथा का प्रासगिक कथाओ के साथ जो सामजस्य हुआ है वह कथा के प्रवाह मे बाधा तो नही उपस्थित करता है अथवा उसका सामजस्य न होने से भी आधिकारिक कथा का विकास स्वाभाविक गति से हो सकता था अथवा नही। उपर्युक्त दृष्टिकोण से जब हम पद्मावत के पृष्ठो को खोलते हैं तो हमें निराश नही होना पड़ता है। हीरामन तोता, तोता खरीदने वाला ब्राह्मण राघव–चेतन, बादल की नवविवाहिता वधू, तथा दूतियॉ आदि अनेक प्रासगिक कथावृत्त है जिनसे मूलकथा की सरसता मे अभिवृद्धि ही होती है। इसके कारण मूलकथा के पात्रो पर जो झलक पडती है उससे उनके व्यक्तित्व अधिक स्पष्ट होते हैं।

जायसी के पूर्व मूल कथा मे प्रासगिक कथाओ का समावेश नही के बराबर था। कुतबन और मझन ने जो ग्रथ रचे थे उनमे एक ही कथा, "जिसे आधिकारिक कथा भी कह सकते हैं", का ही समावेश हुआ है। जायसी ने पद्मावत मे प्रेम की पीर का वर्णन किया है और उस वर्णन मे उन्होने जो कुशलता प्रबध के रूप मे प्रदर्शित की है वह अनुपमेय है।

अन्त में शुक्ल जी का मत जो निर्णयात्मक होते हुए समीचीन भी है उद्धृत कर रहा हूं।

"जो कुछ हो, काव्य का जैसा घटना चक्र चाहिए पद्मावत का वैसा ही है। चाहे इसमे अधिक जीवन दशाओ को अतर्भूत करने वाला विस्तार और व्यापकत्व न हो, पर इसका स्वरूप बहुत ठीक है।"

●

नवम

पद्मावत की प्रेम–पद्धति

पद्मावत की सम्पूर्ण कथा पर विचार करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि इसका कथानक प्रेम की सुरम्य एव आकर्षक क्यारियो के बीच अकुरित होता है। पद्मावत मे राजा रत्नसेन और पद्मावती के प्रेम की चर्चा की गई है इसी प्रेम के आविर्भाव, विकास और चरम गति तीनो मे ही कथा का प्रारम्भ, विकास और अन्त होता है। संस्कृत साहित्य मे प्रेम की कई पद्धतियॉ प्रचलित है। इन प्रेम–पद्धतियो का वर्गीकरण कई दृष्टिकोणो से किया जा सकता है दाम्पत्य दृष्टिकोण के अन्तर्गत प्रेम की चार पद्धतियॉ साहित्य विधायको द्वारा अपनाई गई है –

१. प्रथम प्रकार के प्रेम मे नायक और नायिका का प्रेमोत्कर्ष विवाह सबध हो जाने पर हुआ करता है।

२. द्वितीय प्रकार का प्रेम वह है जिसका उदय विवाह के पूर्व सार्वजनिक स्थलो जैसे–उपवन, नदी तट, और देवालय आदि मे साक्षात्कार हो जाने के पश्चात् होता है और विवाह हो जाने पर उस प्रेम का शान्त स्निग्ध रूप ही रह जाता है।

३. तृतीय प्रकार का प्रेम, प्रेम न होकर विलासोन्मुख क्रियाशीलता को प्रकट करता है। इसका परिपाक राजाओ के अन्त पुर मे होने वाले रागरग और भोगविलास के बीच दिखाया जाता है।

४. चतुर्थ प्रकार का प्रेम वह है जो गुण–श्रवण तथा चित्र–दर्शन के पश्चात् उदित होता है।

उपर्युक्त चारो प्रकार के प्रेम का वर्णन सस्कृत और हिन्दी साहित्य मे मिलता है। साहित्यकारो ने दाम्पत्य प्रेम की चर्चा करते समय नायिका को नायक की अपेक्षा अधिक उद्वेलित रूप मे प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि विरहावस्था मे स्त्रियो की मनोभावना सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में व्यक्त की गई है। पद्मावत चारो प्रकार के प्रेम का वर्णन संस्कृत और हिन्दी साहित्य मे मिलता है।

पद्मावत के कथानक को ध्यान मे रखते हुए जब हम उपर्युक्त वर्गीकरण 'मे उसका स्थान ढूँढने की चेष्टा करते हैं तो उसे चतुर्थ श्रेणी के अन्तर्गत पाते हैं। राजा रत्नसेन हीरामन तोते से पद्मावती के रूप–सौन्दर्य का वर्णन सुनकर आकर्षित होता है और पद्मावती भी हीरामन तोते के माध्यम से राजा रत्नसेन के

गुणो तथा उसके आकर्षण जनित प्रेम की विह्लता को सुनकर आकर्षित होती है। पद्मावत मे फारसी ढग पर प्रेम का अभ्युदय हुआ है। भारतीय पद्धति के विपरीत फारसी कहानियो मे नायक नायिका की अपेक्षा अधिक व्याकुल चित्रित हुआ है। शीरी फरहाद, लैला मजनू, आदि जितनी भी प्रेम कथाये है सबमे नायक नायिका की प्राप्ति के लिए जमीन आसमान मिलाने का प्रयत्न करते हुए दिखाई देते है। जायसी ने प्रारम्भ तो फारसी ढग से ही किया परन्तु बाद मे पद्मावती के मन मे राजा रत्नसेन के प्रति आकर्षण का प्रादुर्भाव कराकर बजपवद – तमबजपवद की मान्यता को स्वीकार किया है। कथाकार ने फारसी मसनवियो द्वारा वर्णित प्रेम, जिसमे लोक–पक्ष के अभाव रहता है, को न अपनाकर भारतीय प्रेम पद्धति को अपनाया है। उन्होने भारतीय प्रेम–पद्धति के अन्तर्गत लोक रजक एव व्यौहारात्मक पक्ष की चर्चा की है राजा रत्नसेन पद्मावती का रूप–सौन्दर्य सुन कर उसके लिए व्याकुल हो उठता है और जोगी होकर उसको पाने के लिए चल देता है। आचार्य शुक्ल जी इस क्रिया को लोभ के अन्तर्गत मानते है वे इसमे प्रेम का आभास नही देखते। पद्मावती की सौन्दर्य प्रशसा सुनने के पश्चात् रत्नसेन के चित्तौड छोडने मे यद्यपि लोभ की ही वृत्ति रही है फिर भी उसमे प्रेम का अकुर छिपा है यह हमे नही भूलना चाहिए।

शुक्ल ज़ी ने आगे चलकर अपनी बात का परिस्थितियो के आधार पर स्वय खडन किया है वे लिखते है कि "राजा रत्नसेन तोते के मुँह से पद्मावती का रूप वर्णन सुन उसके लिए जोगी होकर निकल पडा और अलाउद्दीन ने राघव चेतन के मुह से वैसा ही वर्णन सुन उसके लिए चित्तौड पर चढाई कर दी। क्योकि एक प्रेमी के रूप मे दिखाई पडता है और दूसरा रूप–लोभी लपट के रूप मे? अलाउद्दीन के विपक्ष मे दो बाते ठहरती है १ पद्मावती का दूसरे की विवाहिता स्त्री होना और २ अलाउद्दीन का उग्र प्रयत्न करना। ये दोनो ही प्रकार के अनौचित्य अलाउद्दीन की चाह को प्रेम का स्वरूप प्राप्त नही होने देते। यदि इस अनौचित्य का विचार छोड दे तो रूप वर्णन सुनते ही तत्काल दोनो के हृदय मे जो चाह उत्पन्न हुई वह एक दूसरे से भिन्न नही जान पडती।"

राजा रत्नसेन की दो पत्नियाँ है। दोनो के ही प्रेम का चित्रण उनकी स्वाभाविक परिस्थितियो के अन्तर्गत ही हुआ है नागमती विवाहित जीवन के सुखानुभव कर अपने को गौरवान्वित मानती है। उसकी प्रेम धारा मे हमे दो मोड दिखाई पडते है वैवाहिक जीवन के अन्तर्गत जिस स्निग्ध प्रेम की प्राण प्रतिष्ठा हिन्दू समाज मे है उसी का निर्वाह जायसी ने नागमती द्वारा कराया है। नागमती "रहै जो पिय के आयसु और बरतै होई हीन।" सोई चाद अस निर्मल जनम न कोई मलीन।।" मे ही जीवन की सार्थकता समझती है। इस शान्त और सुरम्य प्रेमधारा

का मोड हमे उस समय स्पष्ट दिखाई पडता है जब राजा रत्नसेन चित्तौड छोडकर सिहल द्वीप पहुच जाते है। प्रेम के दो पक्ष स्वीकार किया गये है। सयोग और वियोग। इन्ही दोनो पक्षो मे प्रेम का स्वरूप मूर्तिमान होता है। सयोग मे प्रेम का स्वरूप शान्त सुस्थिर एव सयत रहा करता है। वियोग मे वही प्रेम निखरा हुआ प्रभाव युक्त सम्मुख आता है। किसी भावुक ने प्रेम के दोनो पक्षो को लेकर बडी सुन्दर उक्ति कही है "विरह प्रेम की जागृति गति है सुषप्ति मिलन।" अंग्रेजी साहित्य के कवि पी वी शैली ने भी इसी भाव को "A our sweetest songare those that tel of our saddest thought." मे व्यक्त किया है नागमती की प्रेमध ारा का यह मोड इसी भावना से ओत प्रोत है। इसमे विरह जनित व्याकुलता को जो चित्रण है वह जड चेतन सभी को समन्वित किये हुए है। श्री राम की भॉति "हे खग मृग हे मधुकर श्रैनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी।।" आदि न कह कर नागमती राजा रत्नसेन के प्रवास स्थान को जानने के कारण "परवत समुद्र अगमविच, बीहड घन बन ढॉख। किमि कै भेटौ। कनत तुम्ह ना मोहि पाव न पॉख।।" कहती है वह दाम्पत्य सुख का अनुभव करने वाली स्त्रियो की कल्पना कर उनके भाग्य को सराहती है।

"जिन्ह घर कन्या ते सुख, तिन्ह गारौ और गर्व
कन्त पियारा बाहिरै, हम सुख भूला सर्व।।"

श्रीराम चरितमानस मे मर्यादा पुरुषोत्तम राम पत्नी हीन होने के कारण अपने को पक्षी दम्पत्ति से भी हेय मानते हैं।

'नारि सहित सब खग मृग बृन्दा। मानहुॅ मोरि करत हई निन्दा।।"

नागमती की प्रेम धारा के इस मोड मे जिन मोतियो का जाल बिछा वह अनुपमेय है ऋतु प्रभाव के अन्तर्गत विरहिणी की क्या अवस्था होती है इसका चित्रण जिस सुन्दरता के साथ हुआ है वह स्तुत्य है वियोगावस्था मे वही ऋतु जो सयोग के समय सुखदायक और रुचिकर होती है विरह के समय दुखदायक और अरुचिकर प्रतीत होती है आन्तरिक मन की अवस्था के दृष्टिकोण से ही ब्राह्म उपादानो का मूल्याकन हुआ करता है। पी.वी शैली ने इसी भाव को निम्नलिखत पक्तियो मे इतनी सुन्दरता के साथ व्यक्त किया है कि उसके उल्लेख का लाभ मै सवरण नही कर सकता हूँ अत. –

A widow bird sat mourninhg for her love,
upon a wintry bough,
The frozen wind crept on above,
The freezing stream below.
There was no leaf upon the finest bare,

No flower upon the ground,
And little motion in the air
except the mill wheet's sound

ठीक इसी से मिलती जुलती भावना का जो शब्द–चित्र नागमती की विरह व्यथा के माध्यम से जायसी ने प्रस्तुत किया है कि वह बडा ही मर्मस्पर्शी है।

"कुहुकि कुहुकि जस कोइलरोई। रकत आस घुघंची बन बोई।
जहं जहं ठाढ़ि होई बनवासी। तहतह होई घुघची कै रासी।।
बूंदबूंद मंह जानउ जीऊँ। गुंजा गुज्जि करै, पिऊ पीऊ।।
तेहि दुख भए परास निपातै। गुजा गुज्जि करै, पिऊ पीऊ।।
तेहि दुख भए परास निपातै। लोहू बूड़ि उठे होई रातै।
रातै बिम्ब भीजि तेहि लोहू। परवर पाक फाट हिय गोहू।।"

जायसी के सर्वश्रेष्ठ अध्येता आचार्य शुक्ल जी ने निर्णयात्मक शब्दो मे अपने भाव व्यक्त करते हुए लिखा है कि.... "जायसी ने यह कम कहा है कि विरह का ताप इतनी मात्र का है, यह अधिक कहा है कि ताप हृदय मे ऐसा जान पडता जैसे "

'जानहुँ अगिनि के उठहि पहारा। और सब लागहिं अंग अंगारा।।'
'जरत बजागिनिकर पिउ छाहा। आई बुझाउ अगारन्ह माहा।।
लागिऊ जरे, जरै जस भारू। फिर फिर भूंजेसि तजिऊ न बारु।।'

विरह ताप की मात्र नापने के लिए कवियो ने ऊहात्मक पद्धति अपनाई।

जायसी ने भी इसी मार्ग का उनुसरण किया हैं, परन्तु जो गम्भीरता विरह वेदना की तीव्र ध्वनि इनके द्वारा व्यजित हुई है वह अनुपमेय है उदाहरणार्थ....

जेहि पंखी कै नियर होई, कहै विरह कै बात।
सोई पंखी जाइ जरि, तरिवर होहि निपात।।"

नागमती की प्रेम धारा के दूसरे मोड पर हम उस समय पहुँचते हैं जब यह आभास लगता है कि पति पद्मावती के सौंदर्य जाल मे फसे होने के कारण मेरी ओर से उदासीन है। वह मान सम्मान को तिलाजलि देकर पति परायणा की भॉति पति के सुख मे ही सुख मानती हुई अपने अधिकार और इच्छा की अभिव्यक्ति करती है।

"पद्मावति सौं कहहु विहंगम। कन्त लोभाई रही करि संगम।।
तोहि चैन सुख मिलै शरीरा। मो कहँ हिए दुंद दुख पूरा।।
हमहूँ विआही संग औहि पीऊ। आपुहि पाई जानु पर जीऊ।।

मोहि भोग सौं काज न बारी। सौंह दिष्टि कै चाहन हारी।।

पद्मावती के माध्यम से भी सयोग और वियोग दोनो ही पक्षो का निरूपण हुआ है ऋतु के आधार पर जायसी ने सयोग और वियोग दोनो ही अवस्थाओ को मूर्तिमान किया है पद्मावती की सयोगावस्था तथा नागमती की वियोगावस्था का ऋतु आधार पर जो सम्यक चित्रण हुआ है वह स्वानुभूति की वस्तु है पद्मिनी की वियोगावस्था का चित्रण करते हुए कवि कहता है .

"कवल सूख पखुरी बेहरानी। गलिगलि कै मिलि छार हेरानी।।

जायसी ने वियोग पक्ष मे बीभत्स रस का भी कही–कही सामजस्य करने की चेष्टा की है अथवा फारसी अध्येता होने के कारण वे अपने को उससे अलग नही कर सके हैं पर ऐसी स्थिति बहुत कम है। जायसी का सयोग पक्ष पद्मावती तथा वियोग पक्ष नागमती के माध्यम से सुन्दरता के साथ मुखरित हुआ है। सयोग पक्ष मे जायसी ने सयोग की वाणी अन्योक्ति की ओर अधिक झुकी हुई दिखलाई पडती है। जायसी ने सयोग के अन्तर्गत आने वाली विभिन्न स्थितियो जैसे मिलन, अभिसार, और परिहास आदि की भी योजना की है परन्तु यह पक्ष वियोग पक्ष की अपेक्षा अधिक ध्वनित नही हो पाया है।

यह हम पहले ही कह आये है कि लौकिक कथा का आधार लेकर पद्मावत मे ईश्वरोन्मुख प्रेम की अभिव्यजना हुई है। अत ईश्वरोन्मुख प्रेम की उक्तियो का समावेश प्राय· उन सभी स्थलो पर हुआ है जहा उसके लिए जरा भी स्थान मिला है। उदाहरणार्थ जब राजा रत्नसेन दिल्ली मे कैद है`उस समय पद्मावती विलाप कर रही है।

(क) "सो दिल्ली अस निबहुर देशू। केहि पूछहुँ को कहै संदेसू।।
जो कोई जाइ तहाँ कर होई। जो आवै किछु जान न सोई।।
अगम पंथ पिय तहाँ सिधावा। जो रे गयउ सो बहुरि न आवा।।

❀ ❀ ❀

(ख) "कवंल जो बिगसा मानसर, बिनु जल गयऊ सुखाई।
अबहु बेलि फिर पलुहै, जो पिय सीचैं आई।।"

❀ ❀ ❀

(ग) "पिऊ हिरदय महु भेंट न होई। को रे मिलाव, कहौं केहि रोई।।"

उपर्युक्त सक्षिप्त विवेचन के आधार पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि जायसी ने पदमावत मे वियोग पक्ष और शृगार–पक्ष के बीच ईश्वरोन्मुख प्रेम की जो अभिव्यंजना की है वह अन्य किसी साहित्यकार की कृति मे दुर्लभ है।

●

उपसंहार

जायसी सूक्ति सागर मे अभी तक जिन विचारको ने अपने अपने विचार जाल बिछा कर अनुपम मोतियो को निकाला है उनमे आचार्य शुक्ल जी ही अधिक सुसम्पन्न दृष्टिगत होते है उनकी अवगाहन शक्ति अन्य आलचको की अपेक्षा अधिक प्रतिभा सम्पन्न रही है। यही कारण है कि उन्होने जो कुछ लिखा है उसी पर अथवा उसी के आस–पास ही विद्वजन चक्कर काट रहे है और जो जिस पहलू की चमक दमक से प्रभावित होता है उसी की चर्चा कर बैठता है इधर डाक्टर कमल कुछ श्रेष्ठ जी ने प्रशसनीय प्रयास किया है। पद्मावत का भाष्य भी कई साहित्य सेवियो द्वारा लिखा गया है परन्तु जो बात डाक्टर बासुदेव शरण अग्रवाल तथा आचार्य मुशी राम जी के भाष्य मे है वह अन्य मे नही आ पाई है पद्मावत को छोड़कर जायसी की अन्य कृतियो पर अभी पूर्णतया विचार विमर्श नही किया गया है। इसके दो कारण है प्रथम तो पद्मावत का विश्वविद्यालयो की पाठ्य पुस्तको के बीच स्थान पाना तथा दूसरा पद्मावत का अन्य कृतियो की अपेक्षा अधिक आकर्षक एव सरस होना है आचार्य शुक्ल जी की जायसी–ग्रन्थावली की भूमिका को पढने तथा गुरुवृन्द के सत सग से जो कुछ, प्राप्त किया उसे टूटे फूटे शब्दो मे रखने का प्रयास प्रस्तुत पुस्तक मे किया गया है जहा भावो को पचाकर रखने मे कुछ कठिनाई पडी है वहा ज्यो कि त्यो उद्धरणो को देने मे सकोच नही किया गया है।

इधर कबीर और जायसी की तुलना की चर्चा अधिक हो चली हैं विश्वविद्यालयो के प्रश्न पत्रो मे इस पर अनेक बार प्रश्न भी पूछे गये है अत· इस पर विचार करने की इच्छा थी परन्तु स्थूल रूप से सूफी और सन्तकाल के अन्तर्गत इन पर विचार किया जा चुका था अतः पुनुरूक्ति दोष और उखाड पछाड की नीति से सहमत न होने के कारण चुप ही रहना उचित समझा। जिस प्रकार आचार्य सदगुरुशरण अवस्थी ने 'तुलसी के चार दल' लिख कर तुलसी की उन कृतियो की प्रतिभा को, जिनका सामान्य जनता के बीच आदर नही था, प्रकाशित किया है, उसी प्रकार अन्य कोई साधक एव विशिष्ट आलोचक अखरावट, आखिरी कलाम तथा कहारानामा को लेकर प्रयास करे तो एक बहुत बड़े अश की पूर्ति होगी।

●●

डॉ० पुरुषोत्तम वाजपेयी

पिता : स्व० श्री मदन गोपाल वाजपेयी

माता : स्व० श्रीमती रामकुमारी वाजपेयी

जन्मस्थान : 78/156, अनवरगज, कानपुर

शिक्षा : एम०ए०, पी-एच०डी०
शिक्षाधिकारी (प्रशिक्षित)

सम्पर्क सूत्र : 990 वाई ब्लाक, किदवई नगर
कानपुर - 11

प्रकाशित पुस्तकें

1. कबीर और जायसी
2 सूरदास का भ्रमर गीत-सार
3 हिन्दी कथा साहित्य पर
सोवियत क्रान्ति का प्रभाव
4 विचार वीथी (निबन्ध सग्रह)
5 प्रयोजन मूलक हिन्दी
6 समीक्षा की डगर पर
7 प्रतिध्वनि (कविता सग्रह)
8 ठलुहत्व (हास्य व्यग्य सग्रह)
9 सोवियत क्रान्ति सग्रह
10 क्रान्तिकारी लेनिन
11 यू०पी० बैक इम्पलाइज
यूनियन का विकासोन्मुख परिचय
12 भारतीय स्वतत्रता सग्राम
और आजादी के सपूत
13 पुनर्जन्म (कहानी सग्रह)